शीराज़ा

हिन्दी

शीराज़ा

(हिन्दी)

वर्ष ८ अंक १

(जून १९७२)

सम्पादक
श्यामलाल शर्मा



ललितकला संस्कृति तथा साहित्य अकादमी, जम्मू

वार्षिक शुल्क—८) रु०

एक प्रति—२) रु०

सम्पादकीय पत्र व्यवहार

सम्पादक शीराज़ा हिन्दी
ललित-कला संस्कृति तथा साहित्य अकादमी
ऐक्सचेंज रोड, जम्मू

फोन—५०४०

संक्रेटरी द्वारा जम्मू कश्मीर अकादमी के लिये प्रकाशित तथा
अमर आर्ट प्रैस मोती बाज़ार जम्मू में मुद्रित हुआ ।

वर्ष ८ अंक १
जून १९७२

शीराजा हिन्दी वर्ष ८, अंक १ (जून १९७२)

अनुक्रमणिका

कविता कुञ्ज

पत्र मंजूषा

सम्पादकीय

२६ से ३१ मार्च, १९७२
विज्ञान भवन, दिल्ली

१. विश्व संस्कृत सम्मेलन :—

१९७२ का वर्ष भारत के इतिहास में ६४५ ईस्वी के वर्ष की स्मृति कराता है जब महाराजा हर्ष के समय में पाटलिपुत्र में एक सर्व धर्म सम्मेलन हुआ था जिसमें समन्वय की भावना को श्रेय और प्रसार मिला था। भारत वर्ष को संसार के लोग संस्कृत भाषा के माध्यम से जानते हैं। वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत यास्क पाणिनि भवभूति भारवि और कालिदास के अस्तित्व से पहचानते हैं संस्कृत भाषा भारत की प्रतिनिधि भाषा के रूप में जगत्प्रसिद्ध रही है। राजनैतिक शक्ति और संगठन की क्षीणता ने जहां भारत की प्रभुसत्ता को पीछे धकेल दिया वहां इस सांस्कृतिक और धार्मिक प्रतिनिधि को भी उपेक्षित तथा मृत घोषित कर दिया। विदेशी प्रभुसत्ता के प्रचण्डकाल में तथा भारतीयता के आत्म विस्मरण काल में विदेशी विद्वानों के तुलनात्मक अध्ययन ने संस्कृत की महत्ता और प्रतिष्ठा को प्रकाश में लाना प्रारम्भ किया और संस्कृत विश्वभाषाओं के परिवार में वयोवृद्ध तथा सम्मानित सदस्य के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

विधि विधान, राजनीति, दर्शन शास्त्र, आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष, निर्माण कला आदि भिन्न क्षेत्रों में संस्कृत की गम्भीरता और गह्वरता ने संसार को प्रकाश प्रदान किया। विदेशी विद्वानों विशेषतया मैक्समूलर, मोनियर विलियम, विलियम जोन्स, बाप, ब्रूमन. विलसन ग्रिफिथ तथा अन्य कई बन्धुओं ने संस्कृत तथा भारतीयता की महत्ता को संसार के समक्ष प्रदर्शित तथा प्रस्थापित किया। आज संसार के भिन्न-भिन्न देशों में विशेषतया रूस, जर्मनी, फ्रांस, स्पेन, ब्रिटेन, अमेरिका में संस्कृत के गम्भीर अध्ययन के प्रतिष्ठान हैं। भाषा विज्ञान और व्याकरण के क्षेत्र में पाणिनि की अनिवार्यता ने संसार के विद्वत-बन्धुत्व में सीमेण्ट का काम किया है।

साहित्य, भाषा विज्ञान और धर्म के क्षेत्र में आज भी संस्कृत की सर्वत्र प्रतिष्ठा तथा मान है।

भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय ने विश्वसंस्कृत सम्मेलन का आयोजन करके महाराजा हर्ष को स्मृति को ताजा किया है।

स्वतन्त्र भारत की प्रभुसत्ता और सद्भावना पुनः विश्व में विश्वबन्धुत्व और सहयोग तथा सहकारिता की भावना को बल प्रदान करेगी तथा शान्ति स्थापना में योग देगी।

२६ मार्च को प्रथम दिन के उद्घाटन कार्यक्रम में शिक्षा मन्त्री श्री नूरुल हसन, राष्ट्रपति श्री वराहवेंकटगिरि तथा पर्यटन और नागरिक उड्डयन विभाग के मन्त्री डा. कर्णसिंह जी ने संस्कृत की महत्ता और विश्वबन्धुत्व की भावना पर प्रकाश डाला तथा संसार के ४० देशों से आये प्रतिनिधियों का स्वागत किया तथा संस्कृत के योगदान से जागरूक होकर पारस्परिक आत्मबोध तथा परस्पर सहयोग की भावना को दृढ़ करने पर बल दिया।

इतने विशाल आयोजन की व्यवस्था संयोजकों से गम्भीर उत्तरदायित्व की अपेक्षा करती है। छ दिन का यह विशेष अधिवेशन भिन्न-भिन्न कार्य-क्रमों की छटा लिए हुए था। मेरी दृष्टि में सब से महत्वपूर्ण कार्यक्रम भिन्न २ विद्वानों द्वारा लेखों का पढ़ा जाना था। अधिवेशन को चार भागों में बांटा गया और प्रत्येक विभाग में वरिष्ठ विद्वान के निर्देशन में निम्नलिखित योजना के अनुसार लेख पढ़े गये। प्रथम में संसार के भिन्न २ देशों ने संस्कृताध्ययन के विकास उन्नति तथा प्रचार और प्रसार के लिए क्या क्या योगदान दिया है इस विषय पर लेख पढ़े गये। दूसरे विभाग में संस्कृत साहित्य की परम्परा और उसका राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व विषय पर विचारविमर्श हुआ। तीसरे विभाग में पुरातत्व, कला तथा शिक्षा साइंस और शिल्प विज्ञान, संसार की भाषाएं, साहित्य, विचार और संस्कृति, मानवता, विश्वबन्धुत्व और शान्ति, पाश्चात्य साहित्य तथा आलोचना और वर्तमान युग में संस्कृत का स्थान तथा योगदान विषयों पर लेख पढ़े गये। चौथे विभाग में संस्कृत भाषा, साहित्य, विचार और संस्कृति के भिन्न पक्षों पर लेख पढ़े गये। संसार के चालीस देशों के प्रतिनिधियों ने अपने योगदान और सहयोग से संस्कृत विश्व सम्मेलन को सफल बनाया रूस, जर्मनी और फ्रांस, इंगलैंड, स्पेन तथा अमरीका से तो विद्वानों के दल आये हुए थे। अफगानिस्तान, ईरान, टर्की तथा दक्षिण पूर्व एशिया के देशों

मलयेशिया, इण्डोनेशिया, जावा, बोर्नियो, बाली, फिलिपाइन्ज, थाईलैण्ड, चीन, कोरिया, जापान के प्रतिनिधियों ने सम्मिलित होकर अधिवेशन की शान को बढ़ाया और विश्वबन्धुत्व का प्रमाण उपस्थित किया।

नेशनल म्युजियम (राष्ट्रीय संग्रहालय) के कक्ष में पण्डित वर्ग का धर्म व्याकरण और छन्द शास्त्र आदि विषयों पर शास्त्रार्थ बड़ा उद्‌बोधक और प्रेरणास्पद था।

जम्मू कश्मीर से विद्वानों का एक विशिष्ट-दल विश्वसंस्कृत सम्मेलन में भाग लेने के लिये गया हुआ था और उन्हों ने अपने योगदान से संस्कृत साहित्य के भिन्न २ पक्षों तथा शास्त्रार्थ को दिलचस्प बनाया। विश्वसम्मेलन के कार्यक्रमों में राष्ट्रीय संग्रहालय में प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों का तथा अभिलेखों का प्रदर्शन बड़ा प्रभावी था वैदिक यज्ञों तथा धार्मिक कार्यक्रमों में प्रयोग में आने वाले साधनों तथा सामग्री का प्रदर्शन भी बड़ा स्फूर्तिप्रद था। भिन्न २ देशों तथा राज्यों से हस्तलिखित पुस्तकों और पाण्डुलिपियों की प्रदर्शनी बड़ी ही विचित्र और मुग्ध कर देने वाली थी। इण्टरनेशनल इन्स्टीच्यूट आव-कल्चर की ओर से चीन, जापान, कोरिया, दक्षिणपूर्व एशिया में संस्कृत के प्रचार प्रसार सम्बन्धी पुस्तकों की प्रदर्शनी दर्शनीय थी।

सांस्कृतिक कार्यक्रमों में पद्मभूषण श्री सियाराम तिवारी जी का संस्कृत में ध्रुवपद संगीत, केरल कला मण्डल का सुदूर दक्षिण भारत में रामायण के प्रसार और संस्कृत के विचित्र कण्ठ्य तथा काकल स्पर्शी उच्चारण लिये कूडियाट्टक संस्कृत नृत्य नाटक, श्रीमतो संयुक्ता पाणिग्रही का गीत गोविन्द, ब्राह्मण सभा बम्बई का विक्रमोर्वशी नाटक प्राच्य वाणी कलकत्ता का मेघमेदुरमेदिनीयम, संस्कृत रंग, मद्रास का अनारकली, एक से बढ़ कर एक कार्यक्रम थे जिन्हों ने भारत के सांस्कृतिक प्रभुत्व की छाप अमिटरूप में प्रतिनिधियों के हृदय पर छोड़ी।

दिल्ली में संस्कृत नगर में प्रतिनिधियों के निवास तथा भोजन का आयोजन तथा हैदराबाद हौस में विशेष भोज का आयोजन था जिसमें प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी, दिल्ली निगम के महापौर श्री हंसराज गुप्त तथा अन्य मन्त्रियों ने भाग लिया। विशेष सम्मेलनों में जैन मुनि महेन्द्र जी का अवधान विद्या प्रदर्शन, आयुर्वेद, जन शास्त्र, यौगिक क्रिया प्रदर्शन अत्यन्त महत्वपूर्ण सम्मेलन थे।

ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद और अथर्ववेद का प्रामाणिक उच्चारण प्रदर्शन अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यक्रम था।

समारोपसमारोह से पूर्व संस्कृत विश्वसम्मेलन ने कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये :—

प्रस्ताव

१. संस्कृत विश्वपरिषद विश्व के भिन्न २ देशों में संस्कृत के अध्ययन और समन्वय के लिये प्रयत्नशील हो।

२. संस्कृत विश्वपरिषद का विधान बनाने के लिये संस्कृत के विद्वानों की एक समिति बनाई जाये।

३ संस्कृत साहित्य का प्रकाशन किया जाये संसार की अन्य भाषाओं में अनुवाद किया जाये। तथा सस्ते मूल्य पर उपलब्धि करवाई जाये।

४. एक राष्ट्रीय संस्कृत पुस्तकालय का निर्माण किया जाये, जिसमें संस्कृत के विद्वानों को अनुसन्धान की सुविधाएं प्रदान की जायें।

५. केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारें संस्कृत को शिक्षा पद्धति में स्थान दें।

समारोप-समारोह :— उपराष्ट्रपति श्री गोपाल स्वरूप पाठक जी ने कहा कि संस्कृत जीवन्त भाषा है। विदेशी विश्वविद्यालयों में भारत के विद्वानों के साथ आदान-प्रदान होना चाहिये। प्राचीन इतिहास, पुरातत्व, संगीत, दर्शन, भाषा-विज्ञान आदि विषयों में संस्कृत का गम्भीर अध्ययन अत्यन्त लाभप्रद है। १८वीं शताब्दी में संस्कृत के अध्ययन ने योरप के विचार मन्थन और चिन्तन तथा मनन में बड़ा योग दिया।

श्रीमती सरो जनी महिषी ने संस्कृत साहित्य से उद्धरण उपस्थित करते हुए विश्व संस्कृति और विश्व बन्धुत्व में संस्कृत के योगदान की चर्चा की।

उपमन्त्री श्री यादव ने बताया कि चौथी पंचवर्षीय योजना में संस्कृत के प्रचार के लिये पौने तीन करोड़ रुपये खर्च करने की व्यवस्था की गई है।

पद्मभूषण श्रीमती शुभलक्ष्मी ने अपने मधुर कण्ठ से संस्कृत कवितायें संगीत के माध्यम से उपस्थित कीं।

श्री मुट्टु स्वामी दीक्षितार, त्यागराज, श्याम शास्त्री, स्वाति तिरुणाल, नारायण तीर्थ, सुब्रह्म दोक्षितार, जयदेव, सदाशिव तथा डा. वी. राघवन की सद्यः प्रणीत कविता गाकर और भारत वन्दना से संस्कृत विश्व सम्मेलन का समारोय किया।

---

२. आल इण्डिया-कान्फ्रेंस आव लिंग्विस्ट्स का दूसरा अधिवेशन :–

२४, २५ मार्च, १९७२
दिल्ली विश्व विद्यालय

आलइण्डिया ओरियन्टल कांफ्रेंस के अधिवेशन होते हैं दो दो वर्ष के बाद भिन्न २ राज्यों में वहां के विश्वविद्यालय या शासन के निमन्त्रण पर। तीन दिन के अधिवेशन में वैदिक, संस्कृत, इरानियन, इस्लामिक, इतिहास, भाषा विज्ञान, पुरातत्व जन साहित्य इत्यादि अनेकों विभाग होते हैं जिनमें विद्वान अपने २ लेख पढ़ते हैं। एक बड़ी आवश्यकता यह अनुभव को जा रही थी कि भाषाविज्ञान के विभाग में भाषा के विभिन्न पहलुओं पर जितना विस्तृत कार्य हो रहा है और विशेषतया भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जिसमें उच्चारण शास्त्र प्रमुख है पूर्णरूप से या विस्तृत परिधि में सम्मिलित नहीं हो पाता। यह बड़े हर्ष और समाधान का विषय हैं कि आलइण्डिया लिंग्विस्टिक सोसाइटी के तत्वावधान में आल-इण्डिया ओरियण्टल कांफ्रेंस के आदर्श पर आलइण्डिया अधिवेशन की योजना कार्यरूप में परिणत हुई है। १९७१ में All India Conference of Linguists के अभिधान से पूना में प्रथम अधिवेशन हुआ। साहित्य अकादमी के प्रधान तथा International Phonetic Association के प्रधान भारत के National Professor डा. सुनीतिकुमार चैटर्जी की प्रधानता में इसकी स्थापना हुई। देश के विभिन्न भागों से भाषा विज्ञान तथा उच्चारण शास्त्र के पण्डितों ने भाग लिया तथा भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लेख पढ़े और उन पर विचारविमर्श हुआ। इस वर्ष १९७२ में All India Conference of Linguists का दूसरा अधिवेशन दिल्ली विश्वविद्यालय के निमन्त्रण पर दिल्ली में हुआ। २४ और २५ मार्च। दिल्ली विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा. सरूप सिंह जी ने स्वागतीय भाषण पढ़ा तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा. जगदेवसिंह जी ने अध्यक्षीय भाषण दिया।

All India Conference of Linguists के दूसरे अधिवेशन के संयोजक प्रधान डा. पण्डित, मन्त्री श्री डा. दसवानी जी, तथा सदस्य डा. चन्द्र शेखर तथा डा. श्री वास्तव थे। इस अधिवेशन के तीन विभागों में उच्चारण शास्त्र, व्याकरण तथा भाषा विज्ञान के अन्य पहलुओं के आधार पर भिन्न २ विद्वानों ने लेख पढ़े। दो सेमिनार Modality और Analogy पर हुए। भाषा-विज्ञान के विस्तार और विशेष अध्ययन ने Specialisation को बहुत बढ़ावा दिया है। "वादे वादे जायेत तत्वबोध:" के परिणामस्वरूप बहुत सी नई समस्यायें भाषा वैज्ञानिकों के समक्ष आती हैं जिन पर विचारविमर्श से भविष्य के लिये पथ प्रदर्शन मिलता है ओर व्यक्तिगत रूप में हो रहे कार्य अथवा स्थानीय रूप में हो रहे भाषा वैज्ञानिक कार्य को दिशा दर्शन प्राप्त होता है। और व्यक्ति को अपनी स्थिति का परिचय मिलता है। सब से बड़ा लाभ विद्वान को अपना दृष्टिकोण विशाल बनाने का होता है। अपने ही चिन्तन के दायरे में सीमित अथवा अपने ही प्रादेशिक दायरे में सोमित विद्व न जब सार्वदेशीय स्तर पर अन्य विद्वानों के भाषा वैज्ञानिक प्रयासों को देखता है, सुनता है, मनन करता है तो तुलनात्मक अध्ययन उसके मानसिक दृष्टिकोण को विशाल करता है और उसे नई दिशायें प्राप्त होती हैं तथा वह अपने लेख, और परामर्श से इस हो रहे कार्य में अपना योग दे सकता है।

All India Conference of Linguists के दूसरे अधिवेशन के लेखों से जो प्रभाव मेरे मानस पटल पर अंकित हुआ कि वर्तमान में हमारे भाषा वैज्ञानिक विशेषतया नई पीढ़ी के, Historical Linguistics को इतना महत्व न देकर Descriptive Linguistics की ओर हो अधिक प्रवृत्त हो रहे हैं। इसका अपना महत्व है और Specialisation से भाषा के भिन्न पक्षों पर प्रकाश विशेष पड़ता है परन्तु भाषा विज्ञान और संस्कृत ज्ञान का अभाव ये दोनों स्थितियें भाषा वैज्ञानिक के लिये सहायक और पूरक स्थितियां नहीं है। परन्तु अमेरिका द्वारा प्रचारित तथा प्रसारित भाषा विज्ञान का साहित्य और सामग्री इस धारणा को निर्मूल करना चाहते हैं कि भाषा विज्ञान के अध्ययन और कार्य के लिये संस्कृत का ज्ञान अनिवार्य है। तथा Existentialism के आधार पर केवल वर्तमान और प्रत्यक्ष को ही सत्य मान कर चलने में यथार्थ का पालन है। परन्तु वर्तमान विगत और भूत का परिणाम है तथा वर्तमान का हो रहा कार्य भविष्य का निर्माण करने वाला है। ये भी भूलने या उपेक्षा कर देने की बातें नहीं हैं। भाषा वैज्ञानिक के लिए संस्कृत का आधार अनिवार्य है।

———

पुरस्कार

साहित्य संस्कृति तथा ललितकला अकादमी जम्मू कश्मीर द्वारा १९७१ के लिये जिन पुस्तकों को साहित्यिक पुरस्कार प्रदान किये गये हैं वे इस प्रकार हैं :-

हिन्दी	दरार	श्री वेदराही	प्रथम पुरस्कार	१०००/—
,,	और वह मरगई	श्रीमती सावित्री तलवाड़	द्वितीय	७००/—
डोगरी	फुल्ल बिना डाली	स्व. वत्स विकल	प्रथम	१०००/—
,,	खाली गोद	श्री भगवत्प्रसाद साठे	द्वितीय	७००/—
पंजाबी	अम्बर चुप रेह या	श्रीमती सपनमाला	प्रथम	१०००/—
,,	मस्तटकोरां	श्री सुमेर सिह मस्ताना	द्वितीय	७००/—
कश्मीरी	मुजरिम	जी. एन. गौहर	द्वितीय	७००/—
,,	स्यास्त्य च प्रज़ान त हिन्दुस्तानुक अईन	एम. ए. फाजिली	,,	७००/—

शीराजा परिवार को ओर से पुरस्कार विजेताओं को बधाई।

श्यामलाल शर्मा

———

३. शान्तिस्थापना के लिये एक और अनुभव
शिमला समझौता

भारतवर्ष सदैव शान्ति प्रिय देश रहा है। राज्य विस्तार कभी इसकी आकांक्षा नहीं रही। लंका विजय के बाद लंका का राज्य रावण के भाई विभीषण को दे दिया। और लंका को अपनो 'कालोनी' नहीं बनाया। पूर्वी पाकिस्तान को नृशंसता और अमानुषिकता के पंजे से छुड़ा कर बंगला देश के रूप में उसे मान्यता प्रदान की और तन मन धन से उसकी सहायता की। परन्तु उसे भारत की 'कलौनी' नहीं बनाया। पाकिस्तान को उसकी यथार्थता दिखा कर उसे पददलित और ध्वस्त नहीं किया। विजेता की स्थिति में होते हुए भी उसे सम्मान से बुलाया, मित्रवत

आचरण किया और भ्रातृभाव से शान्तिमय जीवन बिताने का अनुरोध किया। शिमला समझौता अपनी शान्तिमय नीति और परम्परागत सद्भाव और मित्रता की नीति का ही परिणाम है। मातृभूमि की रक्षा और मान के लिये अपने सहस्रों वीरों का बलिदान हुआ, सारा देश आर्थिक संकट की चक्की में पिसा, असंख्य कष्ट सहे परन्तु शान्ति की स्थापना के लिये अपनी विजय को सद्भावना, और मित्रता पर न्योछावर कर दिया। पाकिस्तान के गत व्यवहार का अनुभव होते हुए भी उससे सद्व्यवहार कर उसे नैतिक और मित्रता का आदर्श बताया है। नैतिकता और मानव विकास के पथ में उग्र यथार्थवाद और घोर वास्तविकता चेतावनी दे रही है और क्षोभ प्रदर्शन कर रही है। परन्तु सद्भावना की स्थापना के लिये अपनी विजय और बलिदान की बाजी लगा कर देश को पुनः अनुभव की कसौटी पर ला रखने में अपनी शान्ति प्रियता और नैतिकता का ही प्रदर्शन है। आशंकाओं से सतर्कता के लिये हमें अपने सैन्यबल को आधुनिक साधनों और अणु अस्त्रों से सुसज्जित करना और किसी भी परिस्थिति के लिये सन्नद्ध रहना परमावश्यक है। हमारे देश में परम्परागत एकराष्ट्रीयता और देश भक्ति के गुण तथा इतना सामर्थ्य मौजूद होते हुए दूसरों को आतंकित रखने को क्षमता है इसके विपरीत भावना को हृदय में स्थान देने की तथा आत्मलघुता की क्षुद्र भावना के प्रदर्शन की क्या आवश्यकता है।

---

४. १९७१ के भारतीय प्रकाशन

अंग्रेजी ६०००,	हिन्दी २५४५,	बंगला ११८२,	मराठी ११३४
तेलुगु ६९२,	तमिल ८९५,	गुजराती ८८८,	कन्नड ७९१,
मलयालम ७१५,	पंजाबी ३८८,	असमी ३४६,	उड़िया २५२,
उर्दू २१८,	संस्कृत १९५,	डोगरी २०,	राजस्थानी १३,
भोजपुरी १२,	मैथिली ७,	सिन्धी ८,	कश्मीरी ४,
हरियाणवी १।			

(प्रकर से साभार)

---

९. चम्बलघाटियों का आत्म समर्पण

मध्य प्रदेश में अंग्रेजों के समय से चलती आ रही डाकुओं की समस्या ने सारे देश को परेशान किये रक्खा। शासन की कड़ी दृष्टि हुई तो व्यक्ति चम्बल की घाटियों में जा छुपा, सामाजिक तनातनी हुई, पारिवारिक या दलगत झगड़ा हुआ तो मारपीट के बाद कुछ व्यक्ति इन घाटियों में जा छुपे फिर अपने २ ग्रुप बनाकर शासन के विरोध में लड़ते उम्र गुजार दी, दलगत विद्वेष और शत्रुता का बदला चुकाते रहे और प्रदेश भर में आतंक फैलाते रहे। राजनैतिक, सामाजिक दलगत और व्यक्तिगत कारणों पर आधारित यह समस्या पोलीस की उग्रता और दमननीति से शान्त होने की बजाये विकृततर ही होती रही। कितने ही घर बेघर हुए, कितनी जवानियां नष्ट हुईं। और कितने परिवारों के हृदय में जीवन के प्रति क्षोभ और आतंक छाया रहा। यह पशुभाव और प्रतिशोध मानव स्वभाव की प्रथम अवस्था अवश्य हैं परन्तु मानव मन का इन अप्राकृतिक और अमानवीय प्रवृत्तियों से ऊब उठना स्वाभाविक था। गान्धीवाद की अहिंसा और आस्तिकता ने अपना प्रभाव दिखाया और इन घोर जीवन बिता रहे बन्धुओं ने सरकार के आगे आतम समर्पण कर दिया। आचार्य विनोबा भावे और श्री जयप्रकाश नारायण जी के सात्विक और नैतिक आश्वासन पर आत्म-समर्पण का यह कार्य संसार के इतिहास में दिव्य कार्य हुआ है। इस समस्या को अब धैर्य, उदारता, सहिष्णुता और बुद्धिमत्ता से सुलझाने की आवश्यकता है। केवल दण्ड और न्याय इन घाटियों को पुनः संघर्ष और विद्वेष का रण स्थल बना सकता है।

विशेष सूचना :—

१५ जुलाई ७२ को अकादमी की हिन्दी परामर्श दात्री उपसमिति को बैठक में एक निर्णय यह हुआ कि १९७२ के वर्ष में हिन्दी शीराज़ा के दो विशेषांक निकाले जायें। एक "स्वाधीनता रजत जयन्ती" अंक और दूसरा "मानस-चतुश्शताब्दी" अंक। स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रथम वर्ष १९४७ से आज तक की चौथाई शताब्दी में राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक,

शैक्षणिक, विधिविधान और व्यवस्था, साम्प्रदायिकता, एकराष्ट्रीयता, धर्म निरपेक्षता, तथा समाजवाद और राष्ट्रवाद के क्षेत्रों में हम कहां तक पहुँचे हैं इन क्षेत्रों की वास्तविकताएं तथा अपेक्षाएं क्या हैं। राष्ट्रहित और संसार के परिप्रक्ष्य में हमारा उत्तरदायित्व अपने प्रति तथा संसार के प्रति क्या है इत्यादि भिन्न-भिन्न पहलू हैं जिनपर हम विचार कर सकते हैं, और अपनी लेखनी से निबन्ध, कहानी, कविता, एकांकी या अन्य किसी भी साहित्यिक विधा से शोराजा के अंक की श्रीवृद्धि कर सकते हैं।

इसी प्रकार मानस चतुश्शताब्दी अंक के लिये अपनी साहित्यिक कृतियां भेज सकते हैं। रजत जयन्ती अंक के लिये ५ सितम्बर तक तथा चतुश्शताब्दी अंक के लिये सामग्री १५ अकतूबर तक पहुंच जानी चाहिमे।

सं०

डोगरी और संस्कृत का सम्बन्ध

—डा. वेदकुमारी

बंगाली, हिन्दी, पंजावी, डोगरी, मराठी, गुजराती, सिन्धी आदि आधुनिक भारतोय आर्य भाषाएं संस्कृत से निकल कर प्राकृत अपभ्रंश आदि अवस्थाओं में से गुजरती हुई वर्तमान रूपों को प्राप्त हुई हैं या ये भी वैदिक युग की उन बोलियों से ही धीरे धीरे विकसित हुई हैं जिन में से किसी एक महत्वपूर्ण बोली ने व्याकरणबद्ध हो कर संस्कृत का रूप धारण किया था ? इस प्रश्न के उत्तर में दो मत हो सकते हैं परन्तु यह निर्विवाद है कि इन सब भाषाओं का संस्कृत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।

डोगरी भी इसी विशाल भारतीय आर्य परिवार की भाषा है। इस का क्षेत्र जम्मू कश्मीर राज्य का जम्मू प्रान्त, हिमाचल प्रदेश का बहुत सा भाग तथा पंजाब का कुछ भाग है परन्तु प्रस्तुत लेख में जम्मू प्रान्त की डोगरी को ही लिया गया है।

पंजाबी तथा पश्चिमी हिन्दी की तरह डोगरी भी किसी ऐसी प्राकृत से विकसित हुई है जिसका निकट सम्बन्ध शौरसेनी के साथ था। शौरसेनी प्राकृत में संस्कृत य् के स्थान में ज्, व् के स्थान में ब्, त् के स्थान में द् और क्ष के स्थान में क्ख मिलता है। ये विशेषताएं डोगरी में भी दृष्टिगोचर होती हैं। उत्तर पश्चिमी भारत में खशों का पर्याप्त प्रभाव था जिसे भरत ने स्वीकार किया है— "वाह्लीकभाषोदीचानां खशानां च स्वदेशजा।" प्राकृत प्रकाश की भूमिका में खशों की भाषा की विशेषता बताई है कि वह ऐकार बहुला है। डोगरी में विभक्तिरूपों में ऐकार का महत्व उल्लेखनीय है। डोगरी की निजी लिपि टाकरी

ब्राह्मी से विकसित हुई थी। टाकरी नाम के आधार पर टाक्की प्राकृत की कल्पना की गई है जिसे पिशेल ने ढक्की कहा है। ग्रियर्सन के अनुसार यह सियालकोट के पास रहने वाले टक्क जाति के लोगों की भाषा थी। मार्कण्डेय ने इसे संस्कृत तथा शौरसेनी का मिश्रण बता कर द्राविडी विभाषा कहा है और इस की विशेषता शब्दान्त में प्राय: उ की स्थिति, स तथा श्, र् तथा ल् का होना बताया है।[1] डोगरी में स्, श्, र्, ल् की सत्ता तो है परन्तु उ बाहुल्य नहीं। डोगरी की पूर्ववर्तिनी अपभ्रंश तथा प्राकृत भाषा के उदाहरण तो नहीं मिलते परन्तु डोगरी के वर्तमान रूप से प्रतीत होता है कि वह शौरसेनी के निकट थी।

साहित्य की तथा शिष्ट लोगों की भाषा होने से संस्कृत विभिन्न कालों में प्राकृतों तथा अपभ्रंशों को प्रभावित करती रही है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएं अपनी नयी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मुख्यतया संस्कृतशब्दावली का सहारा लेती हैं। डोगरी भाषा भी इस का अपवाद नहीं। पिछले तीन दशकों में जो डोगरी साहित्य रचा गय है उस से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि डोगरी में संस्कृत शब्दावली का तत्सम अर्धतत्सम तथा तद्भव इन सभी रूपों में पर्याप्त प्रयोग हो रहा है। ये संस्कृत शब्द या तो सीधे संस्कृत से आए हैं या हिन्दी आदि पड़ोसी भाषाओं के माध्यम से।

तत्सम शब्दों का प्रयोग बोलचाल की डोगरी में कम है। साहित्य में व्याकरण अलंकार आयुर्वेद आदि से सम्बन्धित शब्द प्राय: संस्कृत के हैं। बोलचाल में विशेष धार्मिक तथा सामाजिक संस्कारों में तत्सम रूप प्रयुक्त होते हैं। कन्यका से विकसित हुआ 'कञ्जक' शब्द सामान्यत: लड़की के लिए प्रयुक्त होता है परन्तु विवाह के लिए वेदी पर आती हुई लड़की 'कन्या' ही कहलाती है। धार्मिक संस्कार में नहाना 'स्नान' है अन्यथा 'न्हौण'। इसी प्रकार अग्निहोत्र, वास्तुपूजा, कुशा, दीक्षा, दक्षिणा, कर्मकाण्ड, कर्म, मंगल, कल्याण, निष्काम, निर्जल, निर्गुण. निष्फल, सफल आदि संस्कृत शब्द तत्सम रूप में धार्मिक संस्कारों तथा धर्मकार्यों से सम्बन्धित बातचीत में प्रयुक्त होते हैं। अधिकांश संस्कृत शब्द डोगरी में तद्भव रूप में ही मिलते हैं और उन के अध्ययन से डोगरी के विकास की कई दिशाओं का पता चलता है जो संस्कृत के साथ उस का सम्बन्ध प्रकट करती हैं।

---

१. Introduction to Prakrit: A. C. woolner—Page 6

संस्कृत तथा डोगरी की ध्वनियां

स्वरों के क्षेत्र में डोगरी में संस्कृत की ॠ लृ ध्वनियों का अभाव है । आ का दीर्घतर रूप भी मिलता है प्राकृतों की तरह ह्रस्व ए तथा ओ भी हैं परन्तु उन की अलग ध्वनिग्रामों के रूप में सत्ता नहीं । व्यञ्जनों में ष् का अभाव है । महाप्राण सघोष व्यञ्जनों तथा महाप्राण हकार का रूप नितान्त बदल गया है ।

तद्भव शब्दों में ध्वनि परिवर्तन

आदिस्वर लोप

डोगरी भाषा में बह्वक्षर शब्द के आदि में ह्रस्व अ उ इ आदि का लोप हो जाता है । इस प्रकार बहुत से संस्कृत शब्द केवल आदिस्वर रहित हो कर डोगरी में सुरक्षित हैं :—

संस्कृत	डोगरी
अनर्थ	नर्थ
अकाल	काल
अभ्यास	भ्यास
अध्याय	ध्या
अधीन	धीन
अमावस्या	मस्या

जहां आदिस्वर लोप कर देने से किसी दूसरे शब्द से अर्थ भेद स्पष्ट नहीं रहता वहां या तो आदि स्वर लोप नहीं किया जाता जसे सं. अज्ञान से डो. अज्ञान, या स्वर विपर्यय कर दिया जाता है जैसे संस्कृत धातु तृ के साथ उत् उपसर्ग लगने से उस का अर्थ पार करना होता है, उसी से हिन्दी की उतरना उतारना क्रियाएं विकसित हुई हैं । डोगरी में उतरना क्रिया के उ का लोप करने से तरना क्रिया से अर्थ भेद स्पष्ट न रहता अतः उ को त् व्यञ्जन के बाद रख कर समस्या का समाधान कर लिया गया और डोगरी रूप बना तुआरना । इसी प्रकार उदासित से दुआस, उड्डयन से डुआना या डुआरना रूप विकसित हुए हैं ।

स्वरभक्ति

संयुक्त व्यञ्जनों से युक्त संस्कृत शब्द स्वरभक्ति युक्त हो कर डोगरी में

आए हैं।

संस्कृत	डोगरी
पवित्र	पवित्तर
पुत्र	पुत्तर
कलत्र	कलत्तर
कर्म	करम
प्रताप	परताप

अ का ऐ में परिवर्तन

संस्कृत शब्दों में अनुनासिक ध्वनि के पश्चात् आने वाले अघोष व्यञ्जन से पूर्व अ ध्वनि डोगरी शब्दों में ऐ में बदल जाती है।

संस्कृत	डोगरी
सन्त	सैन्त
अन्तर	ऐन्तर
अंश	ऐंस
पंच	पैंच
कण्ठ	कैण्ठ
यन्त्र	जैन्तर
मन्त्र	मैन्तर
चञ्चल	चैञ्चल

य् व् का ज् ब् में परिवर्तन

संस्कृत शब्दों में आदि के य् व् डोगरी शब्दों में ज् ब् में बदल जाते हैं। उपसर्ग के बाद आए य् व् भी ज ब में बदल जाते हैं।

संस्कृत	डोगरी	संस्कृत	डोगरी
विराग	बराग	वियोग	बजोग
विस्तार	बस्तार	विपत्	बिपता
वसन्त	बसैन्त	विद्युत	बिज्ज
वेला	बेला	विलाप	बरलाप

विचित्र	बचित्तर	संयोग	संजोग
यश	जस	यज्ञ	जग्ग
यक्ष	जख	यत्न	जतन
योधा	जोधा	यन्त्र	जैन्तर
योगी	जोगी	युक्ति	जुगत
युद्ध	जुद्ध	यादृश	जदेया

स्वर मध्यवर्ती अन्तस्थ य् व् प्रायः इ उ में परिवर्तित हो कर दूसरे स्वरों से मिल जाते हैं। शब्दान्त के य् व् का प्रायः लोप हो जाता है।

संस्कृत	डोगरी	संस्कृत	डोगरी
विनायक	बनैक	स्वभाव	सुभा
नयन	नैन	भाव	भा
लवण	लूण	समय	समा
भवन	भौन	हिमालय	हिमाला
शिवालय	शिवाला	निश्चय	निश्चा
धन्य	धन्न	भाग्य	भाग

संस्कृत शब्दों के बीच आने वाली र् ध्वनि जो प्रायः हिन्दी पंजाबी तद्भव शब्दों में लुप्त हो जाती है, डोगरी तद्भव शब्दों में प्रायः सुरक्षित मिलती है। अशोक के अभिलेखों के उत्तर-पश्चिमी संस्करण की भाषा में भी यह विशेषता इस का उस प्रदेश की प्राकृत से सामीप्य प्रकट करती है।

संस्कृत	डोगरी	हिन्दी	संस्कृत	डोगरी	हिन्दी
सूत्र	सूतर	सूत	दूर्वा	द्रुब	दूब
नेत्र	नेतर	नेत्र	त्रुट	त्रुट	टूट
निद्रा	नीन्दर	नींद	कर्त	कर्त	काट
पत्र	पत्तर	पत्ता	क्षेत्र	खेत्तर	खेत
ताम्र	तरामा	तांबा	प्रति	परति	
ग्राम	ग्रां	गांव	भ्राता	भ्रा	भाई
प्रस्वेद	परसा	पसीना			

सादृश्य के कारण यह र ध्वनि कई ऐसे शब्दों में भी आ गई है जिन में संस्कृत में यह नहीं थी।

संस्कृत	डोगरी
कवल	क्रूली
सम्बन्ध	सरबन्ध
विलाप	बरलाप
चित	चिरता

संस्कृत की मूर्धन्य उष्म ध्वनि ष डोगरी में ख उच्चरित होती है :-

हिन्दी के अनुकरण पर आधुनिक डोगरी में कुछ शब्दों में इस का तालव्य श की तरह उच्चारण भी होने लगा है।

संस्कृत	डोगरी
धनुष	धनख
वर्षा	बरखा
निषिद्ध	निखिद्ध
विष	बिख, बिस
भाषा	भाखा या भाशा

क्ष् का परिवर्तन भी ख या क्ख में होता है :—

संस्कृत	डोगरी	संस्कृत	डोगरी
नक्षत्र	नखत्तर	वृक्ष	रुक्ख
अक्षत	अक्खत	प्रदक्षिणा	प्रदक्खना
क्षत्रिय	खत्री	क्षुरप	खुरपा
क्षीण	खीन	भक्ष	भक्ख
पक्षी	पखेरु	रक्ष	रक्ख
परोक्ष	परोख	शिक्ष	सिक्ख
प्रत्यक्ष	प्रतक्ख	भिक्षा	भिक्ख

कुछ संस्कृत शब्दों का क्ष डोगरी में दारदिक भाषाओं की तरह छ् मिलता है।

संस्कृत	डोगरी
कक्ष	कच्छ
क्षल	छल
नक्षत्र	नछत्तर

संस्कृत शब्दों का श् डोगरी में प्रायः स् में परिवर्तित हो जाता है :—

संस्कृत	डोगरी	संस्कृत	डोगरी
राशि	रास	नश्	नस्स
नाश	नास	विश्राम	बसोना
निराश	निरास	अंश	एंस
शीत	सीत	विदेश	बदेस
शल्य	सल्ल	आदेश	अदेस
शंख	सैंख	आकाश	गास
शब्द	सद्द	अंकुश	अंकस

समीकरण की प्रवृत्ति के फलस्वरूप संस्कृत शब्दों के संयुक्त व्यञ्जनों के स्थान पर द्वित्व व्यञ्जन मिलते हैं।

संस्कृत	डोगरी
तप्त	तत्ता
लग्न	लग्ग
अग्नि	अग्ग
कर्म	कम्म
गर्भ	गब्भे

इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप संस्कृत शब्दों के त्य का च्च में द्य का ज्ज में ध्य का ज्झ में परिवर्तन मिलता है :—

संस्कृत	डोगरी	संस्कृत	डोगरी
नृत्य	नच्च	विद्युत	बिज्ज
सत्य	सच्च	स्विद्य	सिज्ज
वाद्य	बाज्जा	बुध्य	बुज्झ

वर्ण विपर्यय से संस्कृत शब्दों की ध्वनियां डोगरी शब्दों में आगे पीछे हो गई हैं।

संस्कृत	डोगरी
जातक	जागत
कमलासन	कड़मासन
उत्कीर्ण	कनेरना

संस्कृत के आ प्रत्ययान्त (स्त्रीलिङ् द्योतक टाप् प्रत्यय) शब्दों का आ डोगरी में लुप्त हो गया है।—

संस्कृत	डोगरी	संस्कृत	डोगरी
खट्वा	खट्ट	वार्ता	बात
जंघा	जंघ	लज्जा	लज्ज
जिह्वा	जीभ	शिला	सिल्ल
दूर्वा	द्रुब	संध्या	सञ
पीडा	पीड़	आशा	आस

इ प्रत्यान्त संस्कृत शब्दों की इ का लोप हो गया है :—

संस्कृत	डोगरी	संस्कृत	डोगरी
मति	मत	जाति	जात
गीति	गीत	स्मृति	सुरत
अति	अत्त	अंगुलि	औंगल

संस्कृत के अक प्रत्ययान्त शब्दों के क् का लोप कर डोगरी में उन का रूप मिलता है :—

संस्कृत	डोगरी
कण्टकः	कण्डा
वत्सकः	बच्छा
चित्रकः	चित्रा
स्फोटकः	फोड़ा

सम्भवतः इन्हीं शब्दों के सादृश्य के कारण कुछ अकारान्त शब्द भी आकारान्त हो गये हैं :—

संस्कृत	डोगरी
हासः	हासा
अण्डः	अण्डा
स्कम्भः	खम्बा

संस्कृत के इन् (इनि) ईय (छ) इय (घ) इक् (शत्) प्रत्यान्त शब्द डोगरी में ईकारान्त हो गये हैं :—

संस्कृत	डोगरी
मालिन्	माली
धनिन्	धनी
भारतीय	भारती
केन्द्रीय	केन्द्री
तैलिकः	तेली

संस्कृत शब्दों की महाप्राण सघोष स्पर्श ध्वनियां तथा हकार ध्वनि डोगरी (विशेषतः जम्मू तथा कांगड़ा की) में उच्चारण की दृष्टि से बदल गई हैं। शब्दों के आदि में इन ध्वनियों का महाप्राणत्व तथा घोषत्व लुप्त हो जाता है तथा उन के तुरन्त बाद में आने वाला स्वर नीची सुर से बोला जाता है। संस्कृत के धनं घनः भारः शब्द डोगरी में धन, घन, भार लिखे जाते हैं परन्तु इन शब्दों के आदि के ध्, घ् भ् का उच्चारण अघोष अल्पप्राण तथा स्वर का उच्चारण नीची सुर में होता है। शब्दों में अन्य स्थितियों में इन महाप्राण सघोष ध्वनियों का महाप्राणत्व ही लुप्त होता है तथा सुर का ऊंचा या नीचा होना शब्द में बलाघात युक्त स्वर की स्थिति पर निर्भर होता है। यदि बलाघात युक्त स्वर संस्कृत या प्राकृत अवस्था में घ झ ढ ध भ के बाद या तो डोगरी में इन ध्वनियों के बाद नीची सुर मिलती है, जैसे :—

संस्कृत—स्वभाव डोगरी—सुभा (सुबा)

यदि संस्कृत या प्राकृत अवस्था में शब्द में बलाघात युक्त स्वर का स्थान घ झ ढ ध भ से पूर्व था तो डोगरी में सुर ऊंची मिलती है, जैसे :—

संस्कृत—लाभः डोगरी—लाभ (लाब)

हकार ध्वनि का उच्चारण भी इसी प्रकार ऊंची तथा नीची सुर के रूप में मिलता है। यह हकार संस्कृत का हो या संस्कृत की ष ध्वनि या महाप्राण ध्वनियों से प्राकृत में विकसित हुआ हो, डोगरी में ऊंची या नीची सुर को ही जन्म देता है। बलाघात युक्त स्वर हकार से पूर्व हो तो सुर ऊंची होती है, बलाघात युक्त स्वर हकार से बाद में आए तो सुर नीची होती है।

संस्कृत	प्राकृत	डोगरी
ग्रहण		ग्रैण
पलाश	पलाह्	पला
शेखर	सेहर	सेरा
लघुक	लहुक	लौका
पौष	पौह	पौ
हार		आर

विभक्ति चिह्न

अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की तरह डोगरी में भी संस्कृत के विभक्ति चिह्नों का लोप हो गया हैं और उन के स्थान पर परसर्गों का प्रयोग होता है जो संस्कृत के स्वतन्त्र शब्दों के अवशेष हैं। जैसे कृते से गिते, उपरि से पर, मध्य से मज्झाटे। उत्तम पुरुष सर्वनाम के कर्ता कारक के दो रूप मिलते हैं। अऊं संस्कृत के अहम् से विकसित हुआ है तथा में संस्कृत के मया से।

क्रिया रूप रचना

डोगरी क्रिया रूप धातुओं के कृदन्त रूप के साथ सहायक क्रिया लगाकर बनते हैं। राज शेखर की उक्ति कृत्प्रिया उदीच्या: डोगरी भाषा के लिए भी ठीक है। क्रिया रूपों का लिङ वचन कर्ता या कर्म के अनुसार चलता है :—

जागत खन्दा ऐ — लड़का खाता है।
कुड़ी खन्दी ऐ — लड़की खाती है।
जागत खन्दे न — लड़के खाते हैं।
कुड़ियां खन्दियां न — लड़कियां खाती हैं।
जागतै रुट्टी खादी ऐ — जागतै अम्ब खादा ऐ
कुड़ियै रुट्टी खादी ऐ — कुड़ियै अम्ब खादा ऐ

यह कृदन्त तिङन्त का मिश्रण है। क्रिया रूप ए तथा ने कर्त्ता या कर्म के लिङ अनुसार नहीं बदलते परन्तु भूतकाल के रूपों में क्रिया केवल कृदन्त प्रकार की है :—

जागत खन्दा हा — कुड़ी खन्दी ही
जागत खन्दे हे — कुड़ियां खन्दियां हियां

यहां खन्दा खन्दी आदि तथा हा ही आदि रूप कर्ता के अनुसार चलते हैं।

डोगरो में पूर्वकालिक कृदन्त धातु के साथ इयै लगा कर बनाए जाते हैं। संस्कृत में इसो कार्य के लिए प्रयुक्त य प्रत्यय से इस का निकट सम्बन्ध प्रतीत होता है।

संस्कृत	डोगरी	अर्थ
निपीड्य	निपीड़ियै	निचोड़ कर
आनीय	आनियै	ला कर

शब्दावली

संस्कृत को बहुत सी धातुएं डोगरी में अपने पुराने अर्थों में ही प्रयुक्त होती हैं ज़ैसे :—

त्रुट् — टूटना	लिख् — लिखना
लभ् — पाना	रट् — रटना
कृ — करना	भण्ड —
मृ — मरना	दल् — काटना
वस् — रहना	

कुछ धातुओं का अर्थ थोड़ा बदल गया है। नि उपसर्ग युक्त मन्त्र धातु का प्रयोग संस्कृत में न्यौता देने के अर्थ में होता है परन्तु डोगरी में इस का प्रयोग विशेष अवसरों पर ब्राह्मणों को भोजन के लिए आमन्त्रित करने के लिए ही होता है। चक्ष् का अर्थ संस्कृत भाषा में देखना है परन्तु डोगरी में चक्ख का अर्थ किसी को बुरो नजर से देखना होता है। संस्कृत में भक्ष् का अर्थ निगलना होता है, डोगरी में भक्ख का प्रयोग वायु भक्षण के लिए अथवा भोजन को बुरी नज़र से देखने (मानों अदृश्य ढंग से खाने) के लिए होता है। संस्कृत के कई ऐसे शब्द भी डोगरी में सुरक्षित हैं जिन का प्रयोग संस्कृत में भी लुप्त प्रायः है। जैसे वाजसनेयी संहिता में प्रयुक्त शोष (गरमी की ऋतु) डोगरी में सोहा के रूप में, माध्यन्दिनी संहिता में उपलब्ध बष्कयणी (चिर प्रसूता गौ) डोगरी में बाखड़ी के रूप में मिलता है। इस क्षेत्र में सभी अनुसन्धान करने की आवश्यकता है ताकि डोगरी तथा उस की बोलियों में परम्परा से सुरक्षित संस्कृत भाषा की निधि को प्रकाश में लाया जा सके।

————

निमाड़ की संस्कृति, जीवन और साहित्य

—रामनारायण उपाध्याय

किसी भी संस्कृति को, वहां के जीवन और साहित्य से जुदा नहीं किया जा सकता।

जीवन की विभिन्न साधनाओं की अंतिम परिणति का नाम यदि संस्कृति है तो उस साधना की बेल में खिलने वाले सुन्दर फूलों का नाम है साहित्य।

जीवन यदि सत्य है तो संस्कृति शिव और साहित्य सुन्दर का प्रतीक है यों जीवन, साहित्य और संस्कृति के समन्वय में ही 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' की मांगलिक समष्टि अंतर्निहित है।

यदि आप निमाड़ की संस्कृति का दर्शन करना चहें, तो आपको यहां के जीवन और साहित्य से एकरस होना होगा और जीवन एवं साहित्य से एकरस होने का अर्थ है, यहां के लोक जीवन एवं लोक साहित्य से, तादात्म्य स्थापित करना।

आइये, निमाड़ भी आपका स्वागत करता है। देखिए ये विंध्य और सतपुड़ा की पर्वत श्रेणियां अपनी दोनों भुजाएं फैलाकर आप से गले मिलने को लालायित हैं और इसके दक्षिणी प्रवेश द्वार पर स्थित असीरगढ़ का किला, समुद्री 'सतह से, बाईस सौ फीट ऊंचे उठकर आपको अपने यहां आने का मौन निमंत्रण दे रहा है। हृदय की तरह मध्य में स्थित ओंकारेश्वर नामक प्रसिद्ध तीर्थ लक्ष लक्ष जनता के लिये प्रणाम पूजन और आकर्षण का केन्द्र रहा है और सुदूर एकान्त में होने पर भी धारा क्षेत्र का जलप्रपात आंपको मंत्र मुग्ध करने की क्षमता

रखता है। भील सरदार तांतिया की वीर गाथायें, आज भी यहां के घर घर में प्रचलित हैं और संत सिंगा के आध्यात्मिक भजनों से यहां का जन मन ओत प्रोत रहा है। संगीत की धाराओं की तरह प्रवहमान नर्मदा और ताप्ती के जल से आप यहां की संस्कृति का संदेश सुन सकते हैं।

नदियों के किनारे ही हमारी सभ्यता ने विकास पाया है। गंगा के किनारे अगर भारतीय सभ्यता पनपी है तो नर्मदा को निमाड़ की संस्कृति के निर्माण का श्रेय रहा है। नर्मदा · कि जिसके बारे में आचार्य क्षितिमोहन सेन ने कहा था…"गंगा के किनारे यदि सौन्दर्य खोजना हो तो गंगोत्री की ओर जाना पड़ेगा किन्तु नर्मदा के उद्गम से लेकर मुहाने तक सौन्दर्य बिखरा पड़ा है।"

"गंगा को ज्ञान का रूप माना गया है क्योंकि उसके किनारे ऋषियों ने ज्ञान की उपलब्धि की, और यमुना को प्रेम का प्रतीक माना गया है क्योंकि उसके किनारे भक्ति का संगम प्रयाग में हुआ है। नर्मदा भी एक विशेष भावना का प्रतीक है और वह है तपस्या और आनन्द की भावना। उससे ऋषियों ने तपस्या के द्वारा आनन्द की प्राप्ति की। उत्तर भारत और दक्षिण भारत के बीच में बहने के कारण वह उत्तर की आर्य और दक्षिण की द्रविड़ संस्कृति का सन्देश वहन करती है।"

यहां की ऊबड़ खाबड़ जमीन के बीच भी लह लहाने वाली खेती, अमाड़ी की भाजी और ज्वार की रोटी से पुष्ट होने वाला जीवन, और झुलसा देने वाली गरमी के बीच भी, मुस्कराने वाले पलास के फूल से, मानो एक ही सन्देश गूंज रहा है, 'तपस्या का आनन्द।'

यों शासन व्यवस्था की दृष्टि से, निमाड़ दो भागों में विभाजित रहा है, एक मध्यप्रान्त के अंतर्गत और दूसरा महामालव से संबन्धित। निमाड़ और मालवा को यदि भाई भाई कहें तो भी अन्युक्ति नहीं।

भौगोलिक दृष्टि से उत्तर में विंध्याचल, दक्षिण में सतपुड़ा पूर्व में छोटी तवा और पश्चिम में सुदूर धार और बड़वानी को लेकर इसकी सीमायें बनती हैं। और यह स्वाभाविक है कि इस बीच बसी ग्राम जनता की भाषा ही 'निमाड़ी' के नाम से प्रसिद्ध रही है। निमाड़ी भाषा पर गुजराती की मिठास और मालवी के माधुर्य का अद्भुत असर रहा है।

जब मैं निमाड़ की बात सोचता हूँ तो मेरी आंखों में, ऊंची नीची घाटियों

के बीच बसे छोटे-छोटे गांव, गांव से लगे ज्वार और तूअर के खेतों की मस्तानी खुशबू और उन सब के बीच घुटने तक ऊंची धोती पर महज एक अंगरखा लटकाये भोले भाले किसान का चेहरा तैरने लगता है।

यहां की ऊबड़ खाबड़ जमीन और उसके चेहरे में कितना साम्य रहा है। स्वभावतः वह अत्यंत मेहनती और सहनशील होता है, यहां की ऊबड़ खाबड़ जमीन को साफ समतल खेतों में बदल देने का श्रेय उसे ही है। उसने इतने कष्ट सहे हैं कि कष्टों को मुस्कराकर पार कर जाना उसके संस्कारों में बिन्ध गया है। उसने इतनी भूख सही है कि दो चार दिन भूखे पेट निकाल देना उसकी आदत में शुमार हो गया है।

वह विश्वास पर बिक जाता है। धर्म पर झुक जाता है। सब की सहता है पर कभी शिकायत नहीं करता, सब की सुनता है पर कभी अपनी ओर से नहीं कहता। वह कभी थक कर नहीं बैठता, झुक कर नहीं चलता और परिश्रम में भी विश्राम का आनन्द पाता आया है।

दुख का पहाड़ आ जाये या सुख की क्षीण रेखा वह सदा मुस्कराता है और अकेले रह जाने पर भी अपनी राह चलना नहीं छोड़ता।

वह इतना सीधा रहा है कि अपने ही घर के आंगन से गुजरने वाली ट्रेन में भी आप उसे बजाय कहीं जगह बना लेने के डिब्बे के कोने में चुपके से खड़े खड़े यात्रा करते देख सकते हैं। यात्रा में भी वह बजाय किसी से उलझने के, अपने साथी मित्रों से ही बात चीत करने या स्वयं, मौन, आत्मस्थ रह जाने में, आनन्द का अनुभव करता आया है।

वह अशिक्षित भले हो पर सुसंस्कृत रहा है। स्नेह, पारस्परिक सहयोग और सहकारिता जैसे महान् गुण उसके जीवन के अभिन्न अंग बन चुके हैं।

आज भी गांव में यदि किसी के यहां कोई रिश्तेदार आता है तो वह सारे गांव के द्वारा एक ही रिश्ते से पहचाना जाता है। मानों यहां गरीब और अमीर का, ऊंच और नीच का, जाति और धर्म का, छोटे और बड़े का, भेद भाव भूल कर एक का मामा या काका सारे गांव के मामा या काका हो उठते हैं।

सदियों से विलुप्त अनाज के माध्यम से वस्तुओं का आदान प्रदान करने और रुपये के बदले अनाज में ही मजदूरी चुकाने की प्रथा का आज भी यहां प्रत्यक्ष दर्शन किया जा सकता है।

यहां की जमीन की ही तरह यहां के "जानपद जन" मटमैला गेहुँआ रंग लिये होते हैं। हल की नोक से जमीन की छाती पर उभरे हुए ढेलों की तरह, इनके चेहरों पर सदियों का दुख दरद, आसानी से पढ़ा जा सकता है।

लेकिन जिस तरह कठोर पर्वत अपने हृदय में नदियों के उद्गम को छिपाये रहते हैं वैसे ही ये ऊपर से शुश्क दिखने पर भी सदियों से अपने अन्दर 'लोक संगीत' को परंपरा को जिन्दा रखे हुए हैं।

जब भी इन्हें अवकाश मिलता है गांव की चौपाल पर भजन मंडलियां जुटती हैं और झांझ और मृदंग के सहारे अस्त होते हुए सूर्यास्त की कालिमा को प्रभात की लालिमा से मिला दिया जाता है।

वैसे भील भिलाले और कोरकू आदि निमाड़ की प्रमुख जातियां रही हैं। लेकिन बढ़ती हुई पूंजीवादी सभ्यता ने इन्हें किसान से खेतीहर मजदूरों में बदल दिया है।

स्वभाव से भील अत्यन्त ही ईमानदार, उदार विलक्षण बुद्धि और जिन्दा-दिल होते हैं। गरीबी के बावजूद भी आप इनके चेहरे पर, एक अजीब, मस्ती और मुस्कराहट देख सकते हैं। रास मंडलों में लाये जाने वाले इनके 'स्वांग' समूचे निमाड़ में प्रसिद्ध हैं। एक ओर जहां अपनी विलक्षण बुद्धि, अद्भुत भाव भंगिमा और मौलिक सूझ बूझ के सहारे ये लोगों को हंसते हंसाते लोट पोट करा देते हैं तो दूसरी ओर निर्दोष व्यंग्य की तीखी चोट के सहारे समाज के चेहरे पर पड़े झूठे दंभ, मान मर्यादा और गलत धारण ओं के नकाब को भी उलट कर फेंक देते हैं। समूचे निमाड़ में उनके जैसे विनोदी व्यक्ति आपको दूसरे नहीं मिलेंगे।

आप निमाड़ के किसी भी गांव में चले जाइये वहां आप, संत सिंगा के प्रति असीम श्रद्धा पायेंगे। चाहे किसी की भैंस गुम जाय या कोई नई भैंस खरीद कर लाये दोनों सिंगा की मनौती लिये बिना नहीं रहेंगे। उनके भजनों में निमाड़ के जन मन की व्यथा और उससे ऊपर उठने की आकांक्षा दोनों को मानों मन-चाहा मार्ग मिल गया है। जब किसान का मन दुख दर्द से घिर जाता है और वह अपने आप को नितांत एकाकी पाता है तो उसके अंतर की घनीभूत पीड़ा मानों सिंगा के शब्दों में ही बाहर निकलने की राह पाती आई है।

संत सिंगा की यह विशेषता रही है कि उन्होंने यहां के जन जीवन और जमीन से तदाकार हो यहां की लोक भाषा निमाड़ी में ही लगभग ग्यारह सौ

आध्यात्मिक भजनों का निर्माण किया है।

समूचे संत जगत में शायद सिंगा पहले संत हैं जिन्हों ने खेती के माध्यम से आध्यत्मिकता का सन्देश दिया है।

कुंवार के महीने शरद पूर्णिमा की निर्मल चांदनी के दिनों जब गांव में किसी के घर झांझ मृदंग पर सिंगा के गीत गूंज उठते हैं तो दर्शक का मन भी अनायास गुनगुनाने लगता है।

'म्हारा सिर पर सिंगा जबरो, गुरु में सदा करत हूं मुजरो।' मेरे सिर पर सिंगा का वरद हस्त है मैं उसे बार बार प्रणाम करता हूं।' निमाड़ी लोकगीतों में आप निमाड़ की संस्कृति ही नहीं, निमाड़ के जीवन और साहित्य का दर्शन कर सकते हैं।

ये गीत ही तो हैं जो मनुष्य का असीम सुख हा नहीं असीम दुख में भी सदा साथ देते आये हैं। इनमें आप मानव जीवन के मधुरतम स्वप्न, असीम वेदनायें, महान महत्वाकांक्षायें, विराट कल्पनायें और बारीक से बारीक स्वभाव चित्रण से लेकर सुन्दर से सुन्दर स्वरूप वर्णन पायेंगे।

जैसा कि एक बार आचार्य हजारी प्रसाद जी द्विवेदी ने कहा था, 'लोक गीत की एक एक बहू के चित्रण पर रीति काल की सौ सौ मुग्धायें, धीरायें, खंडितायें, निछावर की जा सकती हैं। क्योंकि ये निरलंकार होने पर भी प्राणमयी हैं और वे अलंकारों से लदी होने पर भो निष्प्राण हैं।'

इनमें एक ओर यदि आप सोने और रूपे के घड़े को रेशम की डोर से खींचने वाली पनिहारिन का दर्शन पायेंगे तो दूसरी ओर मान सरोवर की तरह पिता, गंगा को तरह मां, गुलाब के फूल की तरह बच्चे और केले के वृक्ष की तरह कन्या का वर्णन भी पायेंगे।

इनमें यदि कहीं आप नजदोकी पहाड़ी के क्षितिज से उगने वाले सूर्य की सुहागिन स्त्री के भाल पर शोभा देने वाले कुमकुम से तुलना पायेंगे तो कहीं दिये से ज्योति के मिलने की तरह, दिन से रात और राजा से रानी को मिलाने वाली सुन्दर संध्याओं का वर्णन भी पायेंगे।

निमाड़ जब गाता है तो एक ओर उसमें मधुमास का रेशमी खुमार होता है और दूसरी ओर पलास कुंज के धधकते हुए फूलों की छाया। इन गीतों में

उन सबों के रंग उतर आये हैं। सबों की प्रतिध्वनियां गूंज गई हैं।

इसमें भी विवाह के गीतों को यदि, आत्मा का संगीत कहें तो भी अत्युक्ति नहीं। इनमें मां की ममता, पिता के लाड़-प्यार, बहन के स्नेह और भाइयों की व्यथा की कहानी गुंथी हुई है।

विवाह में लग्न के बाद जब कन्या की विदाई का क्षण आता है तो स्त्रियां एक गीत की कड़ियां गाते हुए उसे गाड़ी तक पहुँचाने जाती हैं।

'जिस तरह नीले और गीले बांस की बांसुरी को भी बजना ही होता है उसी तरह अपने भाई की अत्यन्त सुकुमार और लाडली बहन को भी आज ससुराल जाना ही होगा।' और फिर मानों आज तक के नाते रिश्तों को काल्पनिक स्वप्न की तरह भुलाते हुए स्त्रियां कहने लगती हैं। 'हे दुलहिन एक बार पीछे घूमकर तो देखो, देखो तुम्हारे पिता जी खड़े हैं उन्हें आशीष तो देती जाओ।'

इस पर भीगी आखों मानों कन्या का रोम रोम आशीर्वाद देने लगता है। "हे पिता जी तुम राजा की तरह सम्पन्न और सुखी होओ और तुम्हारी करोड़ों वर्षों की आयु हो।"

इस बीच बारात की गाड़ियां आगे बढ़ चुकी होती हैं और स्त्रियां मानों गीत में और भी करुणा को घोलते हुये गाती हैं। 'हे बहन तुमने मां की गोद छोड़ी पिता जी का लाड़ प्यार छोड़ा और खिलौनों का खेलना भी छोड़ दिया अरे तुम सहेलियों के साथ का सहेलीपन भी छोड़ कर आज दुल्हा के साथ कैसे जा रही हो।'

लेकिन कुछ भी हो दो दल विभिन्न दिशाओं की ओर बढ़ते जाते हैं और यों शरीर से प्राण निकलने की तरह मां से कन्या की विदाई हो जातो है :

गनगौर के गीतों में तो मानों निमाड़ का समग्र जीवन ही उतार कर रख दिया गया है। ये गीत क्या हैं मानों सदियों से जानपद जन द्वारा घोषित संस्कृति, सरसता, भावुकता और प्रतिभा के प्रतीक हैं।

देखिये इसके एक गीत में शृंगार की कैसी विराट कल्पना की है। गीत में पत्नी अपने पति से कहती है—"हे प्रिय यह जो आकाश में सब से तेजस्वी शुक्र का तारा चमक रहा है उसकी मुझे बिन्दी गढ़वा दो और वह जो उत्तर में

बरसने योग्य बदली छाई है उसकी मुझे चूनर रंगवा दो और सुनो स्वर्ग
कड़कने वाली बिजली की उसमें मगजी लगवा देना, साथ ही आकाश में चमकने
वाले ताराओं की मुझे कंचुकी सिलवा देना कि जिसके अग्र भाग में सूर्य और
चन्द्र जड़े हों। और हां वह जो इठलाता बलखाता हुआ स्याह वर्ण का वासुकि
नाग दिख रहा है न, उसे मेरी वेणी में गुंथवा दो।' इस पर बेचारा पति स्तब्ध
मौन हो उठता है और कहता है 'हे गौरवर्ण रनु तू बड़ी हठवालो है।'

इन गीतों के बारे में श्री डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा था
"निमाड़ी गनगौर का गीत 'शुक्र को तारो रे ईश्वर उगी रहयो' अकेला लाख
गीतों के बराबर है। उसकी विराट कल्पना देखकर मैं स्तब्ध रह गया। आकाश
सूर्य, चन्द्र, ध्रुव, शुक्र, मेघ, विद्युत भारतीय आकाश के इन चिरंगत उपकरणों
से लोक गीत की भावात्मा का शृंगार हुआ है जो साहित्य में भी कहीं कहीं देखने
में आता है। सचमुच यह निमाड़ी गीत गीतों का राजा है। उसके कुछ गीत
जैसे 'स्वप्न' भारतीय संस्कृति के उज्जवल हीरे हैं। मैं इन गीतों के भावों से
बहुत प्रभावित हुआ हूं।"

निमाड़ इतना सहृदय है कि यहां आप कभी भी आइये, एक आत्मीय जन
की तरह स्वागत पायेंगे। वह अपने यहां आने वालों का ही नहीं विदा होने वाले
मेहमानों का भी अरु आवजो' याने बार बार और आइयेगा कह कर स्वागत ही
करता आया है।

———

'मानस' और 'साकेत' के राम

—डा. निज़ाम उद्दीन

आदि काल से राम का चरित महाकवियों के लिए आकर्षण.केन्द्र रहा है। यद्यपि रामचरित की यह अक्षुण्ण देदीप्यमान दीपशिखा कवि-शलभ को अनायास ही आकृष्ट करती है। इसमें कवियों का क्या दोष ? दोष तो उन्हीं गुणों का समझिए जो एकमात्र राम में समाश्रित हैं :—

नायं कवीनां दोष:

स्व सूक्तिनां मात्रं रघुकुल तिलकमेकं कलयतां
कवीनां को दोष: सतु गुण गणानामवगुण:
यदेतैर्नि.शेषैरपर गुणलुब्धैरिव जग-
त्यसावे काश्चक्रे सतत सुख संवास वसतिः।
(प्रसन्नराघवकार)

आधुनिक युग के सर्वोत्कृष्ट रामकाव्य-प्रणेता राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी लगभग इसी भाव को अग्रांकित पंक्तियों द्वारा समर्थित किया है :—

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बनजाय सहज सम्भाव्य है॥

राम का यह महच्चरित तो विदेशों में भी काव्य-सृजन का प्रेरणा-स्रोत बना।[1]

---

१. खोतानी रामायण (तुर्किस्तान) तिब्बी रामामण और रामायण का कवित, सेरतराम, राम यागम (इण्डोनेशिया)।

भारत में आदि कवि बाल्मीकि, सन्तशिरोमणि तुलसीदास और भारतीय संस्कृति के आख्याता गुप्त जी को रामकाव्य-प्रणेता को 'वृहत्त्रयी' का अभिधान दिया जा सकता है। बाल्मीकि ने राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में, तुलसी ने पौराणिक परिवेश में रखकर ईश्वरावतार के रूप में और गुप्त जी ने युगानुरूप मानवतावादी लोकनायक के रूप में चित्रित किया है। तुलसी और गुप्त जी दोनों ही विष्णूपासक हैं, अवतारवाद में पूर्ण निष्ठा रखने वाले हैं, पर दोनों के राम कुछ सीमा तक समान होने पर भी अविसंवादित हैं जैसे तुलसी ने बाल्मीकि रामायण से प्रेरणा प्राप्त कर भी राम को मौलिक रूप में चित्रित किया है, वैसे ही गुप्त जी ने भी इन दोनों महाकवियों से प्रेरणा प्राप्त कर राम को अपनी प्रतिभा से भिन्न रूप में अंकित किया है। यहां केवल तुलसीकृत 'मानस' और गुप्त-प्रणीत 'साकेत' के आधार पर राम-चरित पर विचार-विमर्श किया जा रहा है।

साम्य:

(१) रामनाम की महिमा—दोनों महाकवियों ने रामनाम की महिमा का वर्णन किया है। भले ही यह वर्णन सन्त कवियों की परम्परानुसार है[1], तो भी इस पर वैयक्तिक छाप है।

तुलसीदास स्मरण करते हैं :—

सब गुण रहित सुकबिकृत बानी,
राम नाम जस अंकित जानी।
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही,
मधुकर सीस सन्त गुनग्राही।

साकेतकार ने राम-नाम की महिमा के साथ राम-गुणगान भी किया है। रामनाम का स्मरण करने से सद्‌गति की प्राप्ति निश्चित है, पर राम का अनुगमन करने से तो दूसरों को भी सद्‌गति मिलती है, उनका भी भवसागर से उद्धार हो जाता है :—

जो नाम मात्र ही स्मरण मदीय करेंगे,
वे भी भवसागर बिना प्रयास तरेंगे।

---

१. कबीर कहै मैं कथि गया कथि गया ब्रह्म महेस।
रामनांव ततसार है सब काहू उपदेस॥ —कबीर

पर जो मेरा गुण कर्म स्वभाव धरेंगे,
वे औरों को भी तार पार उतरेंगे।

भले ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को 'राम-नाम' अरुचिकर लगा हो[1], परन्तु इस पर कवियों की अविचल आस्था बनी रही है, यह अवितथ्य है।

(२) अवतारवाद—दोनों कवि राम को विष्णु का अवतार और अपना परमाराध्य मानते हैं। दोनों ही अवतारधारण करने का कारण अधर्म का नाश करना, भूभार नष्ट करना और लोक-कल्याण मानते हैं। तुलसी के राम पीड़ा-प्रतिदारण करने और कौणपकुल का संहार करने वाले हैं :—

जब जब नाथ सुरन्ह दु:ख पायेउ,
नाना तनु धरि तुम्हहिं नसायेउ।

× × ×

जब जब होई धरम कै हानी,
बाढहिं असुर अधम अभिमानी।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी,
सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी।
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा,
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।

तुलसी के राम असुर, अधर्म, अनीति के नाशक हैं, गुप्त जी के राम संसार के पथ प्रदर्शक, भूभार हरता, परोपकारी तथा दु:ख झेलने वाले हैं :—

हो गया निर्गुण सगुण साकार है,
लेलिया अखिलेश ने अवतार है।
किस लिए यह खेल प्रभु ने है किया,
मनुज बन कर मानवी का पय पिया।

× × ×

पथ दिखाने के लिए संसार को,
दूर करने के लिए भू-भार को।

तथा—

---

१. तुलसीदास—पृ० १७३

सुख देने आया, दु:ख झेलने आया,
मैं मनुष्यत्व का नाट्य खेलने आया।

(३) परम शक्तिमान—दोनों के राम अप्रतिम सुन्दर और बलवान हैं। अल्पायु में ही ताड़का, सुबाहु, आदि का वध करने वाले हैं। पर कल्याण की भावना की तरंगों से दोनों का हृदय आलोड़ित है। तापित, शापित, विवश, विकल, बलहीन और दीन के संरक्षक हैं।

(४) शरण वत्सलता—दोनों के राम शरणागत के रक्षक हैं, उसे अभयदान देने वाले हैं। कट्टर से कट्टर वैरी को भी शरण में आया देखकर अविलम्ब, अवलम्ब प्रदान करते हैं. उसे अवमानित या तिरस्कृत नहीं करते। कैसे उदारचेता हैं 'मानस' के राम! :—

कोटि विप्रबन्ध लागत जाहू।
आये सरन तजऊं नहिं ताहू॥
जो समीप आवा सरनाई।
रखिहऊं ताहि प्रान की नाई॥

'साकेत' के राम भी शत्रु का बन्धु-सदृश दाह-संस्कार करने वाले हैं और युद्ध में रक्तारक्त रावण से दयार्द्र हो कैसी प्रेमपगी वाणी में कहते हैं :—

आ भाई, वह वैर भूल कर,
हम दोनों सम दु:खी मित्र।
आजा क्षणभर भेंट परस्पर,
करलें अपने नेत्र पवित्र।

(५) गुरु-भक्त और माता-पिता का आज्ञाकारी—'मानस' और 'साकेत' दोनों के राम गुरु के परम भक्त हैं। गुरु-चरणारविन्द के उपासक हैं। वे माता पिता के भी आज्ञाकारी सुपुत्र हैं, 'अवज्ञा' शब्द से सर्वथा अनभिज्ञ और अपरिचित हैं :—

सेवक सदन स्वामि आगमनू।
मंगल मूल अमंगल दमनू॥
सुनु जननी सोई सुत बड़भागी।
जो पितु मातु वचन अनुरागी॥
(तुलसी)

लोक-व्यवहार की दृष्टि से राम के ये वचन हस्तामलकवत् सत्य हैं, महत्वपूर्ण हैं। तभी तो बिना किसी विचिकित्सा के चतुर्दश वर्ष वन-गमन स्वीकार करते हैं, किसी प्रकार का न विकार है, न विषाद है। राम पिता की आज्ञा से सागर में भी कूद सकते हैं, अग्नि में गिर सकते हैं, क्या नहीं कर सकते ?

मुझे यह इष्ट है चिन्तित न हो तुम।
पड़ूंगा आग में भी जो कहो तुम॥
तुम्हीं हो तात ! परमाराध्य मेरे।
हुए सवधर्म अब सुखसाध्य मेरे॥

(६) नायक :—'मानस' और 'साकेत' दोनों में राम का नायकत्व असंदिग्ध है। भले ही 'साकेत' में चिर उपेक्षित उर्मिला का उद्धार किया गया हो, परन्तु नायिका की भूयसि गरिमा से वह अभिमण्डित नहीं। 'साकेत' में आद्योपान्त राम की महिमा, गरिमा शील-शौर्य का ही उल्लेख प्राप्य है। कई एक सम्पूर्ण सर्ग राम पर ही आधृत हैं (जैसे चौथा, पाँचवां सर्ग आदि)। 'मानस' में तो निर्विवाद राम नायक हैं ही, पर 'साकेत' में भी वह इस आसन्दी से च्युत नहीं :—

"यद्यपि गुप्त जी ने लक्ष्मण और उर्मिला को प्रधानता देने का प्रयास किया है किन्तु अपने आराध्यदेव राम को भुला न सके और अनायास ही प्रमुख स्थान पर ला बिठाया।[1] मैथिलीशरण गुप्त की अनिच्छा (हार्दिक नहीं, काव्यगत) होने पर भी राम ही 'साकेत' के नायक हैं।[2]

वैषम्य :—

(१) अलौकिकता—तुलसी के राम अलौकिक शक्ति-सम्पन्न हैं, अलौकिक कर्म-कर्त्ता हैं, क्योंकि वह विष्णु के अवतार ही नहीं, साक्षात् ब्रह्म भी हैं। इसके प्रतिकूल गुप्त जी के राम ईश्वरावतार होने पर भी मानवोचित कर्म-कर्त्ता हैं, तभी तो कवि ने कहा है :—

"राम तुम मानव हो ? ईश्वर नहीं हो क्या ?"

मैथिली शरण गुप्त अति प्राकृत तत्व का निराकरण कर वस्तु को तर्कसंगत रूप प्रदान करते हैं। अतएव उनके महाकाव्यों में राम और कृष्ण की अलौकिक

---

१. डा. प्रतिपालसिंह—बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य—पृ० १३२
२. मानव—खड़ीबोली के गौरवग्रन्थ—पृ० ६७

शक्तियों का प्रयोग प्राय: नहीं है ।[1]

(२) गम्भीरता और विनोदप्रियता--'मानस' में राम का व्यक्तित्व पूर्णत गम्भीर है, वहां समवयस्कों से हास परिहास भी नहीं किया जाता। तुलसी के समक्ष सदैव राम का अपरिमेय पूज्य रूप ही विराजमान रहता है और तुलसी उसके सामने श्रद्धानत प्रणति निवेदन ही करते रहते हैं। परन्तु 'साकेत' में गम्भीर्य के साथ राम में विनोद-प्रियता का प्रामुख्य है। राम और सीता का विनोद-प्राचुरत्व देखिये :—

हो जाना लता न आप लता-संलग्ना।
करतल तक तो तुम हुई नवल दल मग्ना।
वह सीता फल जब फले तुम्हारा चाहा,
मेरा विनोद तो सफल, हंसी तुम आहा।

(३) नारी-चरित्र—तुलसी बाबा ने नारी को बड़ा गर्हित समझा हैं। कहीं उसका न्यायोचित आदर सम्मान नहीं किया, सर्वत्र उसे निंद्य समझकर प्रताड़ित किया है। युग के प्रभाव को ग्रहण करने के कारण उन्होंने नारी-जाति की भर्त्सना की है और खूब की है :—

भ्राता पिता, पुत्र उरगारी,
पुरुष मनोहर निरखत नारी।
होई विकल मन सकहिं न रोकी,
जिमि रविमनि द्रव रविहि विलोकी।

भले ही उपर्युक्त पंक्तियां शूर्पणखा के प्रसंग में लिखी गई हैं, परन्तु यहां भी नारी विशेष नहीं नारी-जाति को ही लांछित किया है फिर राम जैसा आदर्श पात्र भी पंपासर के तीर पर कहता है :—

सुनु मुनि कह पुरान स्रुति सन्ता,
मोहि विपिन कहं नारि वसन्ता।
जप तप नेम जलासय भारी,
होई ग्रीषम सोखई सब नारी।
× × ×

१. डा. उमाकान्त—मैथिलीशरण गुप्त: कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता—पृ० १५८

पाप उलूक निकर सुखकारी,
नारी निविड़ रजनी अंधियारी।

(अरण्यकांड)

तुलसी के सबसे बड़े हिमायती (पक्षपाती) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है:— "सब रूपों में स्त्रियों की निन्दा उन्होंने नहीं की है। केवल प्रमदा या कामिनी के रूप में, दाम्पत्य रति के आलम्बन रूप में की है—माता, पुत्री, भगिनी आदि के रूप में नहीं। इससे सिद्ध है कि स्त्री जाति के प्रति उन्हें कोई द्वेष नहीं था।"[1] पर यह धारणा असंगत एवं पक्षाग्रहयुक्त है। उन्हें स्त्री से द्वेष था। हां, राम जिसका कुछ सम्पर्क हो गया वह उनके कशाघातों से बच गई। माता के रूप में कैकेई की क्या कम निन्दा की है (द्रष्टव्य है अयोध्याकाण्ड, पृ० ४६२)। गुप्त जी ने इस प्रकार स्त्री को अपमानित नहीं किया, वरन् उनके प्रति श्रद्धा और सम्मान प्रकट किया कैकेई जैसी कुकर्मा के चरित्र को भी अवदात्त बनाया है। और राम तो कहीं भी स्त्री के प्रति अपशब्द कहने का साहस नहीं करते। गुप्त के राम तो उसकी आरात्रिका ही उतारते रहे।

(४) आदर्श च्युत—स्त्री-जाति के प्रसंग के अतिरिक्त राम के आदर्शवाद पर एक स्थान पर और बट्टा लगता है, एक प्रश्नचिह्न लगता है जहां वह बालि का 'बिटप-ओट' से वध करते हैं—

"मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि।"

(किष्किन्धा काण्ड)

भला जब सुग्रीव का पक्ष ही लेलिया था तो फिर इस प्रकार छिप कर धोखे से वध करने की क्या आवश्यकता थी? हां, वह राम-शरण में अवश्य नहीं आया था। 'साकेत' में राम का चरित्र इस प्रकार के कलंक से अनाविल है।

औचित्य और सामंजस्य :

वेसे तो 'मानस' और 'साकेत' दोनों में ही राम की दिव्याभा क्षरित हो रही है। उनका आदर्शवाद, मर्यादावाद, लोककल्याण, कर्तव्यपरायणता का भव्य

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—तुलसीदास—पृ० ४६

भवन सम्प्रति हिन्दी-जगत में विराजमान है, परन्तु कभी कभी तुलसी-निर्मि भवन को भूचाल विकम्पित कर डालता है और गुप्त जी का टस से मस नहीं होता। तुलसी के राम प्राचीनता का 'सिम्बल' हैं तो गुप्त जी के राम नवीनत का आधुनिकता का। गुप्त जी ने बाल्मीकि और तुलसी के राम का आधुनिकीकरण किया है। तुलसी के राम में आर्शवाद का आधिक्य है, गुप्त जी के राम व्यावहारिकता का प्राधान्य है। एक लोकोत्तर कर्म करने वाले हैं, दूसरे कर्मठ उत्साही मानव के समान लौकिक कर्म करने वाले। भारतीय संस्कृति के प्रचारक प्रसारक दोनों ही हैं। गुप्त जी ने राम के पौराणिक रूप में युगानुरूप मानवत का सन्निवेश किया है। बाल्मीकि और तुलसी के राम का समन्वित रूप 'साकेत में गुप्त जी द्वारा अभिव्यंजित है। अतः गुप्त जी को २०वीं शताब्दी का बाल्मीकि या तुलसी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

———

डोगरी कहानी–एक परिचय

—भुवनपति शर्मा

कहानी मानव मात्र की सर्वाधिक प्रिय साहित्यिक विधा है। वह उसकी काल्पनिक सखी है जिसके माध्यम से दुखी एवं संघर्षशील मानव प्राणी अपने कष्टों को सहलाता है उसके साथ हंसता है रोता है और उसमें अपनी अतृप्त इच्छाओं, अभावों की पूर्ति पाता है, जिज्ञासाओं को शांत करता है तथा अपनी ही मानसिक गहराइयों एवं उंचाइयों के चित्र देखता है। वह उसकी आकांक्षाओं एवं कल्पनाओं की शब्द प्रतिमा है। मानव स्वयं अपूर्ण है कहानी में वह अपेक्षाकृत अधिक पूर्णता से साकार होता है। अत: कहानी उसे बहुत प्रिय है। तभी तो असभ्य एवं अनगढ़ आदिम-मानव के इतिहास के साथ ही कहानी के जन्म का एक छोर जुड़ा हुआ है। नृशास्त्र के विद्वान कहते हैं कि जंगलों में प्रकृति के साथ संघर्ष करता जंगली पशुओं के साथ युद्ध में अपने अस्तित्व की सार्थकता श्रेष्ठता बनाए रखता हुआ आदि मानव भी अपनी कल्पनाशक्ति, एवं इच्छा शक्ति के सहारे कई कहानियों की रचना करते करते ही आज की सभ्यावस्था को प्राप्त हुआ है। उसने अपनी उन आदिम अनुभूतियों, संघर्षपूर्ण घटनाओं एवं मनः स्थितियों वा आवेगों को अपने ढंग से प्राचीन कथाओं में भित्ति चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। प्राचीन कहानी मानव के भावों, आवेष्टनों का चित्रांकण करती थी। ज्यूं २ मानव की विकास यात्रा मंजिलें मारती गई उसके आवेष्टनों संदर्भों की भूमिकाएं भी बदलती गईं फलस्वरूप अभिव्यक्तियों की शैलियां भी बदलीं। आधुनिक कहानी एक बहुत लंबी विकास यात्रा के आयामों को समेटे हुए है। स्थूल एवं चमत्कारी घटनाओं के माध्यम से मानव में धर्म एवं नैतिकता के प्रति आस्था बनाए रखने का कहानी का उद्देश्य आज मानव के अंतर्बाह्य एवं

आस पास के यथा तथ्य फोटोचित्र उतारने में ही अपने लक्ष्य की सफलता मान
है। कल्पना एवं आदर्श की भावभूमि से नीचे उतर उसने यथार्थ की कठो
भूमि और मानव मन के गहरे दलदल से सामग्री जुटाना प्रारम्भ कर दिया है
ऐसा प्रतीत होता है मानो यही कहानी की विकास यात्रा का अंतिम पड़ाव
जिसके बाद कहानी या तो परिवृत्त करेगी अन्यथा किसी नये यात्रापथ का अनु
संधान यह स्थिति और तथ्य कहानी ही नहीं अन्य साहित्यिक विधाओं के बा
में भी सत्य है एक प्रकार की दिङ्विमूढ़ता संपूर्ण आधुनिक साहित्य पर छा र
है कविता और कहानी की गति तीव्र होने के कारण उनमें यह स्थिति जल्दी उ
पहुँची है और कहानी अकहानी के चक्कर में अभी एक प्रकार की "कैसे कहां कि
ओर जाऊं" की स्थिति में आ पहुंची है। हिन्दी कहानी की इस स्थिति क
बाकी सब भाषाओं पर प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी है। डोगरी भाषा का कथ
साहित्य इसका अपवाद नहीं पर डुग्गर के जागरूक साहित्यकारों की सतर्कता
कारण डोगरी भाषा की कहानी में कोई अस्वाभाविकता नहीं आ पाई उसे पथ
भ्रम नहीं हुआ इसी संदर्भ में डोगरी के प्रमुख साहित्यकारों के डोगरी कथ
साहित्य में योगदान का एक संक्षिप्त विश्लेषनात्मक परिचय इस प्रयास
मिलेगा।

डोगरी कहानी आयु के लिहाज से अभी 20 साल की हुई है। 1944
भगवत प्रसाद साठे द्वारा लिखित पैहला फुल्ल नामक छोटी सी पुस्तक से डोगर
कथा साहित्य का सूत्रपात हुआ। जिसमें आज "सूई तागा", "उच्चियां धारां"
"पैरें दे नशान", "काले हत्थ", "खोरला मानू", "कोले दियां लीकरां" औ
"नीला अम्बर काले बदल" जैसे 21 संग्रह छप चुके हैं। डोगरी भाषा को कुछ
प्रमुख कहानियां हिन्दी पंजाबी उर्दू आदि में अनूदित होकर सुप्रतिष्ठित हो चुकी
हैं। अन्य भाषाओं की 60 से अधिक श्रेष्ठ कहानियां डोगरी में अनूदित हो चुकी
हैं और डोगरी को साहित्य अकादमी से मान्यता मिलने के बाद यह गौरव भी
एक तरुण डोगरी कथाकार स्व. नरेन्द्र खजूरिया को मिला कि पांच हजार के
अकादमी पुरस्कार से उनका नीला अम्बर काले बद्दल नामक कहानी संग्रह
पुरस्कृत हुआ। डोगरी कहानी अब तरुणाई में है और अन्य भाषाओं के साथ
कदम मिलाकर चलने का प्रयास कर रही है। जब डोगरी में प्रथम कहानी का
जन्म हुआ उस समय देश परतंत्र था, राजशाही थी और समाज में अनेक प्रकार
की कुरीतियां थीं। उस समय डोगरी के साहित्यकार कहानी और कविता के
माध्यम से जन जागरण का बिगुल बजा कर समाज में सुधार करना चाहते थे।

पहली पहली डोगरी कहानियों में बेमेल विवाह दहेज और दोहरी (कन्या देकर बदले में बहू लेना) विवाह पर करारी चोटें की गई हैं। हिन्दी के भारतेन्दु काल की तरह डोगरी भाषा की कहानी का प्रा भिक रूप भी प्राय: समाजसुधारक पक्ष की ओर ही उन्मुख रहा। 1955 के आसपास डोगरी कहानी में एक ज्वार सा आया और उसके बाद उस ने फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा। आज डोगरी में कुछ ऐसी कहानियां मिल सकती हैं जिन्हें किसी भी अन्य भाषा की सर्वश्रेष्ठ कहानियों की तुलना में सगर्व प्रस्तुत किया जा सकता है। डोगरी के प्रथम कहानीकार हैं श्री भगवतप्रसाद साठे उनके पहला फुल्ल और खाली गोद नाम के दो कह नी संग्रह हैं जिनमें 28 कहानियां हैं। भाषा पर अधिकार मन के सूक्ष्मतम भावों की सरलतम अभिव्यक्ति और पाठकों के मन को छूने वाली भाव व्यंजना के साथ २ डोगरा पहाड़ी जन जीवन के मनमोहक चित्र उनकी कहानी कला की प्रमुख विशेषताएं हैं। डोगरी वातावरण और परिवेश के उचित परिप्रेक्ष्य में चित्रण में साठे जी को बहुत सफलता मिली है। उसी काल खंड के दूसरे महत्व-पूर्ण लेखक हैं श्री धर्म न्द्र प्रशान्त जिन्हों ने ऐतिहासिक आधार ले डोगरी को "खीरली वल" और "नीलम दी खान" जैसी सशक्त कहानियां दीं जिनमें रोमांस भी है रोमांच भी। ऐतिहासिक कथानक के यथार्थ का सुन्दर निर्वाह उनकी कहानियों में मिलता है। डोगरी कहानी में तीसरा नाम श्री रामनाथ शास्त्री जी का आता है उन्होंने 'बदनामी दी छां" और "त्रीया अखंड पाठ" जैसी सशक्त कहानियां लिखी हैं। शास्त्री जी का स्वर यथार्थवादी है जो किसी महत्तर आदर्श की ओर इंगित करता है रोचकता और समाजसुधार की भावना से भरपूर उनकी कहानियां कहीं २ कृत्रिमता लिये लगती हैं। लगता है उनमें जीवन नहीं। लेखक पात्रों कोक ठपुतली की तरह नचाता है। "गर्जदे बदल मिलकदी बिजली" की सोमा इस प्रकार के पात्र का सुन्दर उदाहरण है। इस कहानी में कहीं कहीं अनावश्यक विस्तार है। मगर डोगरी कहानी के क्षेत्र में शास्त्री जा स्थान बहुत ही महत्व-पूर्ण है इस तथ्य को स्वीकार करने में कोई दो मत नहीं। यह डोगरी कथाकारों की पहली पीढ़ी थी जो आज भी डोगरी कहानी की श्री वृद्धि में अपना योगदान दे रही है पर 1945-55 तक कुछ ऐसा समय आया जब डोगरी में कहानियां बहुत कम लिखी गईं कहीं कोई एक आध। कारण यह था कि स्वतंत्र देश की नई उमंगों, आकांक्षाओं के साक्षात को डुग्गर के जन जन तक पहुँचाने में कविता का माध्यम अधिक उपयोगी और प्रभावी था और डोगरी साहित्यकार अपनी शक्तियों को कविता आदि में लगाते रहे।

फिर 1955-56 में डोगरी कथाकारों की दूसरी पीढ़ी उभरी। इसमें राम कुमार अबरोल, नरेन्द्र खजूरिया, वेद राही और प्रो. मदन मोहन। साठ मध्य में इनमें कुछ और भी नाम आ जुड़े, वे थे नरसिंह देव जवाल, मनसाराम चंचल, ओ. पी. शर्मा, चंचल शर्मा और बन्धु शर्मा इत्यादि।

श्री वेदराही की "आले", "छिट्ट, भैनू दाघर" और "मुन्नुआं दा कुरता" डोगरी को अत्यन्त सशक्त कहानियों में से हैं। श्री अबरोल की "ममता दा ऋण" और "खेतरै दी बंड", श्री नरेन्द्र की "दिन बार", "की फुल्ल बनी गे ङारे" "पंज शोर्षकें दी कहानी", श्री मदन मोहन की "सकोलड़े" और "ए मरद बो" डोगरी कथा साहित्य में सदा याद की जाएंगी।

डोगरी के नए कहानीकारों के "नीएं दे पत्थर" चचल शर्मा, "सुक्क बारूद" ओ. पी., "दुद्ध लहू जैह्‌र" मदन मोहन, और "लोग गै लोग" ओ. पी शर्मा कुछ महत्वपूर्ण संकलन तैयार हुए है। इस प्रकार समग्रता से देखने प डोगरी साहित्य में कहानी आज थोड़ा संतोष देती है और भविष्य की विपु सम्भावनाओं का आभास भी।

प्रो. मदन मोहन ने डोगरी कहानी को विस्तार दिया है। मानव जीव की अस्वभाविक स्थितियों और कुण्ठाओं के चित्र उनकी कहानियों में मिलते हैं मिर्जा गालिब की पत्नी को आधार बना कर लिखी गई उनकी कहानी उमराओ बेगम डोगरी की भारती साहित्य को एक देन कही जा सकती है। कहीं कहीं उनमें नाटकीयता आ जाती है और कहीं वे अस्वाभाविक स्थिति निर्माण में भी प्रयोग करते हैं। सुन्दर हास्य, व्यंग्य का उदाहरण उनकी "ए मरद बो" कहानी में मिलता है।

डोगरी कहानी के सबसे महत्वपूर्ण कथाकार है श्री नरेन्द्र खजूरिया। उनका भाषा पर असाधारण अधिकार था। बात से बात निकालते जाना, छोटे छोटे चुस्त फिकरे और प्रभावी व्यंग्य उनकी कहानी कला की श्रेष्ठता के प्रमाण हैं। गहनतम भावों को सरलतम शब्दों और शब्द चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत करने में नरेन्द्र की तुलना नहीं। 'दिन बार' की भागां और उनके पात्रों के माध्यम से डोगरा पहाड़ी जन जीवन के जो ममस्पर्शी चित्र नरेन्द्र ने अंकित किये हैं वे देखते ही बनते हैं। नरेन्द्र के पात्र संघर्षशाल नहीं वे भाग्यवादी हैं उनका 'कवता का अन्त' और तागे वे चट्टान में घटनाक्रम अधिक बलपूर्वक उभरा

है जिससे कहीं २ अस्वाभाविकता दीखती है पर डोगरी कहानी क्षेत्र में नरेन्द्र अमर हैं और जब तक 'कास्तू दा काला तित्तर' और 'नीला अम्बर काले बदल' रहेगी वह मिट नहीं सकता।

वेदराही डोगरी के साथ साथ हिन्दी के भी कहानीकार हैं। उन्होंने डोगरी कहानी में नए प्रयोग किये हैं, नई कल्पनाएं दी हैं। उनकी "आले" कहानी युद्ध की पृष्ठ भूमि पर लिखी गई एक ऐसी रचना है जिससे युद्ध के खिलाफ एक शब्द भी न कहते भी युद्ध की विभीषिका का भयानक चित्र खींचा गया है। युद्ध मानव मन से प्यार को निकाल कर किस प्रकार मात्र स्वार्थ को ही प्रश्रय देता है और फिर भाई चारे रिश्ते नाते सब भूल कर अपनी जान बचाने के लिए भागता है, इसी का मनोवैज्ञानिक चित्रण और विश्लेषण इस कहानी में किया गया है। हिन्दी में उनका एक नया कहानी संग्रह दरार छपा है—डोगरी भी उनसे अपना हक मांगती है—आशा है नई तकनीक और नए प्रयोगों का यह कथाकार इस अपेक्षा को पूरा करेगा।

राम कुमार अबरोल ने डोगरी कहानी को अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य में लिखा है उनकी कहानी का घटना चक्र जम्मू ही नहीं दिल्ली, गोवा, बम्बई आदि स्थान भी हैं। उनकी कहानियों की प्रमुख शक्ति भावुकता है और कहीं नाटकीयता भी।

श्री नरसिंह देव जमवाल की प्रमुख विशेषता उनकी ठेठ मुहावरेदार भाषा और पारिवारिक जीवन के मधुर चित्र हैं, "जमदर" के मनोभावों का जिस गहराई औरु तीक्षणता से चित्रण किया गया है वस अप्रतिम हैं। उनकी इस मनोवैज्ञानिक सूझ बूझ और ज्ञान क प्रभाव उनकी अन्य कहानियों पर भी है। कहानियों में कभी २ अस्वाभाविक, भावुकता भी मिलती है और वे समाज सुधार तथा आदर्शवाद की भावना से अनुप्राणित भी हैं।

चंचल शर्मा की छोटी २ देश भक्ति से परिपूर्ण कहानियां उपदेशात्मक नहीं होती। रोचक होती हैं और पाठकों का मनोरंजन बड़ी खूबी से करती हैं।

ओ. पी. शर्मा की कहाहिनों की ताकत उनका चरित्र चित्रण है। सजीव वातावरण और रोचक कथोपकथन उनकी दो अन्य विशेषताएं हैं मृत्यु उनकी कहानियों का एक अनिवार्य आधार अंग है और वे पाठक को एकाएक चौंका देने

में विश्वास रखते हैं। इनके अतिरिक्त बन्धु शर्मा, ओम गोस्वामी, श्री वत्स विकल और छत्रपाल अन्य कहानी लेखक हैं जिनका मूल्यांकन कुछ समय के बाद होगा। यह डोगरी कहानी का दुर्भाग्य है कि इसे कुछ बहुत ही अच्छे लेखकों की सेवा से वंचित होना पड़ा है। डी. स्वर्णकार, श्री वत्स विकल, चरण सिंह और नरेन्द्र खजूरिया की असामयिक मृत्यु ने डोगरी कहानी को बड़ा धक्का पहुंचाया है। जब डोगरी से अन्य भाषाओं और अन्य भाषाओं से डोगरी में अनुवाद प्रारंभ हो गये हैं और वह स्थिति आ रही है जब डोगरी भाषा किसी महान साहित्यकार का जन्म होगा उसकी उत्सुकता से प्रतीक्षा है। सर्वश्री नीलाम्बर देव शर्मा, श्रीमति शक्ति शर्मा, मदन ठाकुर, ठाकुर पुन्छी, विश्वनाथ खजूरिया और यश शर्मा तथा कुलदीप जन्द्राहिया ने एक एक दो दो कहानियां लिखकर कहानी लेखन छोड़ दिया पर आशा है कि समय की मांग को पहचान कर और अपने दायित्व को समझ कर वे डोगरी कथा साहित्य को समृद्ध करने में अपना योगदान देने से पीछे नहीं हटेंगे।

———

नोट :—इस लेख के प्रकाशित होते होते श्री ओमगोस्वामी के "नैंह ते पोटे" ओ. पी. शर्मा के "सुक्का बरूद" और "लोक गै लोक" और श्री बन्धु शर्मा के "परशामे" सुन्दर कहानी संग्रहों ने डोगरी साहित्यक्षेत्र में पदापण कर डोगरी कथा साहित्य की अभिवृद्धि की है। इन कहानियों में वर्तमान की 'नई कहानी' की रंगत और चाशनी मिलती है तथा भविष्य की उज्वलता की ओर संकेत करती हैं।

———

मानव जीवन और उसके मध्य भाषा का अर्थ परिवर्तन

—रमेश चन्द शर्मा

विश्व का प्रत्येक दिन अपने साथ कुछ नवीनता लाता है और जाते समय न जाने कितने चिन्ह छोड़ जाता है ! जो पहले था वह आज नहीं; और जो आज है शायद कल न रहे ! काल का चक्र घूमता है; और उसके साथ घूमता रहता है मानव और उसका जीवन ! मानव एक सामाजिक प्राणी है, और नितनूतन अनुभूतिमय है उसका जीवन ! भाषा एक ऐसा सर्वोपरि गुण है जो मानव को अन्य प्राणियों से अलग कर मानवीय स्तर प्रदान करती है। पर यह भाषा मानव और उसके जीवन के समान ही परिवर्तनशील है। शब्दों के अर्थ भी बदलते रहते हैं। कोई समय था जबकि भारत में आश्रम ही शिक्षाकेन्द्र थे। कुछ शिष्यों को अपने गुरूजी के लिये वन में 'कुशा' (एक प्रकार की घास) लेने जाना पड़ता था इसलिए गुरूजी शिष्यों को स्नेह से 'कुशल' कहा करते थे। किन्तु आज हर प्रकार के चतुर और निपुण व्यक्ति को 'कुशल' कहा जाता है। पुरोहित जिस 'कुल' को 'वंश-वृक्ष' कहा करते थे वही 'कुल' कश्मीरी भाषा में आ कर 'वृक्ष' के लिये प्रयुक्त होने लगा। नवप्रचलित शब्दों को छोड़ कर कुछ ही शब्द ऐसे होते हैं जिनका वास्तविक अर्थ बना रहता है, अन्यथा उनका अभिप्राय इतना बदला हुआ होता है कि गहन वैज्ञानिक अध्ययन ही समझ सकता है। आज के शैतान शब्द का अंग्रेजी पर्याय नेव (knave) किसी समय नौकरों के लिए प्रयुक्त होता था। अंग्रेजी का शब्द 'पर्सन' (Person) किसी समय रोमन नाटकों में चरित्रों को उभारने वाले विभिन्न मुखौटों के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द 'परसोना' (Personna) से बना है जो कि फिर 'चरित्र' के लिए प्रयुक्त होने लगा था और बाद में 'व्यक्ति' के लिए ही रह गया। अमूर्त्त भाव से मूर्त्त भाव तक पहुंचने के लिए इस शब्द के अर्थ में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है।

आज 'पुलिसमैन' के लिए प्रयोग होने वाला 'कान्स्टेबल' शब्द किसी 'अच्छे स्थायी साथी' का अर्थ रखता था (लैटिन में 'commes stabuli' का यह अभिप्राय है)।

भाषाविज्ञान के अनुसार किसी शब्द का अर्थ उस शब्द के विभिन्न सन्दर्भों का योग है।[1] इस अर्थ में जो परिवर्तन होता है वह केवल तथाकथित सभ्य भाषाओं तक ही सीमित नहीं है वरन् यह तो उस प्रत्येक भाषा में होता है जो कि विभिन्न परिवेशों से गुजरती है; जिसे बोलने वालों का जीवन परिवर्तनशील हो फिर चाहे वे यूरोप के सभ्य व्यक्ति हों और चाहे अफ्रीका के जंगलों में निर्वसन घूमने वाले इन्सान। शब्दों में अर्थ और स्वरूप-परिवर्तन की क्रिया निरन्तर चलती रहती है. किन्तु यह क्रिया, नयी संरचना करने वाली अन्य क्रियाओं के समान बहुत धीमी होती है। शब्दों के मूल्यों में आने वाले परिवर्तन के कारण विलेम ग्राफ़ ने अर्थ परिवर्तन को 'शब्दकोश का परिवर्तन' माना है किन्तु वह स्पष्ट कहते हैं कि यह शब्दकोश उस वन जैसा नहीं जो कि वृक्षों का समूह मात्र ही हो। शब्दों के विपरीत वृक्षों में नयी नयी संरचानायें और रंग आते रहते हैं। शब्द का सम्बन्ध तो मानव मन से होता है।[2]

अर्थपरिवर्तन होता क्यों है? अपने प्रसिद्ध लेख में मैइये (Meillet) ने शब्द का सन्दर्भ प्रतीक, और समाज—इन तीन कारणों का उल्लेख किया है।

---

1. Linguistically, the meaning of a word is the sum total contexts in which it appears.

2. ...but the so called vocabulary of a language is not a collection of words in the same sense in which a forest is a collection of tress. Trees are objects which exist outside the observing subject; independently of the latter they may assume various colours, sizes, and shapes. The static word is essentially a psychological habit of symbolization and reference whose seat is in the human mind itself. A change in the vocabulary is therefore nothing but a change in the symbolizing and referential habits of a group of human beings. Language & Languages P. 292.

मानसिक पक्ष, जिसको मैइये ने छोड़ दिया था, का विश्लेषण स्पेर्बर ने किया है। उसके अनुसार शब्द का विशेष संवेगात्मक अभिप्राय (particular emotive connotation) अर्थ-परिवर्तन लाने में बहुत महत्व रखता है। परिवेश, समाज और संस्कृति के सन्दर्भ में ही मानव जीता है; और जीवन में उसके हर प्रकार के अनुभवों एवं विचारों का संप्रेषण करती है उसकी भाषा! प्रकृति चिरन्तन व स्थायी है; उसकी शक्तियां और तत्व शाश्वत हैं: हजारों लाखों वर्ष पूर्व जिस प्रकार एक विशेष अनुपात में मिल कर हाइड्रोजन तथा आक्सीज़न पानी बनाती थीं, आज भी बनाती हैं। दूसरी ओर मानव और उसकी रचनाओं का एक इतिहास है—उसके द्वारा बनायी वस्तुएं टूटती-फूटती रहती हैं। चूंकि भाषा भी समाज द्वारा अपनाया मानवनिर्मित एक संप्रेषण-माध्यम है अतः वह भी विघटनशील है, पर भाषा में होने वाले परिवर्तन, चाहे वे ध्वनि और स्वरूप के परिवर्तन हों, चाहे अर्थ-परिवर्तन, उनके कारण काफी जटिल होते हैं क्यों कि न तो कारणों से हमेशा वही क्रिया होती है और न कारण ही वही रह पाते हैं। मानव द्वारा चलाई शक्तियों का वेग उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है, आने वाली हर पीढ़ी इससे प्रभावित होती है और यही क्रम आगे भी पीढ़ी दर पीढ़ी चलता है। नये नये मोड़ आते हैं जिससे वो शक्तियां और कारण परिवर्तन लाना शुरू कर देते हैं।

व्यक्ति में अनुकरण करने की मूल प्रवृत्ति है। जब भी वह किसी प्रथा या रीति को चलता हुआ देखता है तो सुगमता होने पर वह भी उसका अनुकरण करता है इस प्रकार के अनुकरण से एक विशेष लीक या ट्रैण्ड बन जाता है जो कि कालान्तर में पहले ट्रैण्ड से बिल्कुल भिन्न हो सकता है। इस प्रकार शब्द भी किसी अर्थ की लीक से हट कर दूसरे अर्थ की लीक पर चलने लगते हैं। जब शब्दों का वास्तविक इतिहास व महत्व विगत में खो जाता है तो बिल्कुल भिन्न एवं महत्व वाले शब्दों में उनका विलय हो जाता है। शब्दों के अर्थ बदलने तथा बढ़ाने वालो सुगमता-प्रवृत्ति की शक्ति के उदाहरण ढूंढने की आवश्यकता नहीं। यही क्रिया ता प्रतिदिन होती रहती है। किसी वस्तु या विचार का नामकरण पूर्वपरिचित वस्तु की समानता के आधार पर ही होता है। कुरियक लोग बैल को "रूसी हिरण' (Ruski olehn) कहते हैं। किसो समय 'टेबल' का अर्थ था 'वह वस्तु जोकि खड़ी हो' इस लिए जब मेज का अविष्कार हुआ और ज्यूं ही वह अंग्रेज़ों के जीवन में प्रचलित हुई तो उसे भी 'टेबल' कहा ज़ाने लगा; और अब इस युग में, जब मानव ने चद्रमा को चूम लिया है, 'टेबल' का वह पहला अर्थ पूर्णतः विस्मृत हो चुका है।

ये अर्थ दो प्रकार के होते हैं (ग्र) प्रमुख ग्रर्थ (central meaning) (ब) सह ग्रर्थ (marginal meaning)। हर्मन पॉल सबसे पहले वैज्ञानिक थे जिन्होंने बताया कि अर्थ-परिवर्तन के लिए सह-अर्थों का आना, एवं किसी अर्थ-व्यवस्था का लुप्त होना आवश्यक नहीं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वूंट (Wundt) का मत भी इससे मिलता है। वह प्रमुख ग्रर्थ को अर्थ का 'प्रधान तत्व' (dominant element) मानते हैं और कहते हैं विभिन्न सन्दर्भों में ग्राकर यह प्रधान तत्व बदल जाता है। यद्यपि विभिन्न परिवेशों में जीवन समान होता है तो भी जीवन के साधन भिन्न होते हैं। विज्ञान के विकास के साथ जैसे जसे सभ्यता का विकास होता है, जोवन उन्नत होता रहता है। जीवन के बदलते साधनों के साथ ही अर्थों में परिवर्तन आने लगते हैं। लैटिन शब्द पेन्ना (Penna) का ग्रर्थ 'पंख' होता था। इसी 'पेन्ना' शब्द से 'पेन' (Pen) शब्द निकला है। धीरे धीरे पंख लिखने के काम ग्राने लगे। जब पंखों के स्थान पर निबवाली लेखनी का प्रचलन हुआ तो उसे ही 'पेन' कहा जाने लगा। प्रधान अर्थ चलता रहा और सह अर्थ लुप्त हो गया। इस प्रकार ग्राज 'पेन' का ग्रर्थ पंख न होकर लेखन का एक विशेष उपकरण है। प्राचीन काल में किसी का शुल्क या मूल्य पशुओं के रूप में चुकाया जाता था। लैटिन में 'पशु' को 'पेकुस' (Pecus) कहा जाता था टकसालों के विकास से पशुओं का प्रचलन बन्द हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि आज का फ़ी (fee) शब्द जो कि लैटिन के 'पेकुस' से निकला है [Me fr, of fe', fief, of Gmc origin, akin to Old English feoh 'cattle, property'. OHG fihu 'cattle', akin to Latin pecus cattle] केवल शुल्क के रूप में ही प्रयुक्त होता है।

भाषा में आने से पूर्व प्रत्येक नवीन विचार अथवा अनुभव को किसी न किसी अर्थ में बंधना पड़ता है। जैसे ही कोई ऐसा विचार भाषा का द्वार खटखटाता है इसे परम्परागत कई अर्थों से सम्बद्ध ध्वनियों का वह सैट प्रदान किया जाता है जो कि कम से कम भ्रामक हो। यह सब समाज द्वारा अनुमोदित विधि से ही संभव है इसी लिए तो ग्रर्थ एक प्रतीक-क्रिया मात्र है और अर्थ परिवर्तन इस क्रिया से सम्बधित है।[3] अंग्रेजी का कफ़्यू शब्द फ्रेंच के क्वफ़्

3. "Hence, what is called a change of meaning is essentially a semiological phenomenon, always implying that a linguistic sign or symbol is contextually linked to what it refers to or signifies',—Willem L. Graff 'Language and Languages' P. 303.

(couvrefeu) से आया है। फ्रेंच में कूवर का अर्थ होता है 'ढकना', और फ़े का अर्थ 'अग्नि' इस प्रकार कर्फ़्यू का अर्थ हुआ आग को ढकना। मध्ययुग में आग लग जाने पर एक घण्टी बजा कर खतरे की सूचना दे दी जाती थी। किन्तु वर्तमान में कर्फ़्यू सरकार द्वारा किसी आपत्तकालीन स्थिति में लगाया गया वह प्रतिबंध है जिसके अनुसार लोगों को घर से बाहर बहुसंख्या में निकलने की मनाही होती है।

अर्थ-परिवर्तन एक समाजिक मनोवैज्ञानिक (socio-psychological) तथ्य है। और व्यक्ति की बोल-चाल से ही उत्पन्न होता है। व्यक्ति के बदलते भाव एवं विचार ही अर्थ को निर्धारित करते हैं। कई बार वह अपने भाव-संप्रेषण को सुन्दर बनाने के लिए लच्छेदार शब्दों का प्रयोग करता है जो किसी समय शब्द का अर्थ ही बदल देते हैं। आंख के आइरिस (iris) का वास्तविक अर्थ है—इन्द्रधनुष। एक विशेष फूल का नाम डेज़ी अर्थात् 'दिन की आंख' रख दिया गया है। अर्थ-संकोच (Demantic narrowing) और अर्थ-विस्तार (semantic widening) दोनों परिवर्तन संभव हैं। संस्कृत शब्द 'मृग' का अर्थ वास्तव में 'हर प्रकार का जंगली जानवर' था किन्तु अब मृग का अर्थ जानवरों के एक वर्ग विशेष अर्थात् हिरण जाति से ही रह गया है। इसी प्रकार 'मीट' का अर्थ पहले 'हर प्रकार का भोजन' था; मिठाइयों को तो दशाब्द पूर्व तक भी 'स्वीटमीट' कहा जाता रहा है, किन्तु अब इसका अर्थ 'खानेयोग्य मांस' रह गया है। कोई समय था जबकि ऐंग्लो सैक्सन में हर प्रकार के कुत्ते का 'हूण्ड' (Hund) कहा जाता था, किन्तु अब अंग्रेजी में केवल शिकारी कुत्ते को ही हाउण्ड (Hound) कहा जाता है। संस्कृत शब्द 'सर्प' का मूल अर्थ 'रेंगने वाली चीज़' था किन्तु अब यह शब्द रेंगने वाले जीवों के वर्ग विशेष अर्थात् केवल सांप के अर्थ में हो प्रयुक्त होता है। इसके विपरीत जीवन में होने वाले उपयोगों के कारण अर्थ का विस्तार भी हो सकता है। अंग्रेजी का 'सरकम्सटान्स' (Circumstance) शब्द लैटिन के 'सर्कम्स्टैन्सिया' (Circumstantia) से बना है किन्तु लैटिन शब्द का अर्थ (Circumstantia—'that which stands around') आज के अर्थ से संकुचित था; वर्तमान में इस शब्द से वातावरण व परिवेश का अभिप्राय होता है। संस्कृत में कभी, जब कि आर्यों के लिए वटवृक्षों की सघन छाया ही रमणीय स्थान थी, 'वाटिका' का अर्थ 'वटवृक्षों वाली स्थली' से था परन्तु अब इस शब्द का अर्थ हर प्रकार की बगीची से है। इसो प्रकार 'पेपर' शब्द आजकल कागज, समाचार पत्र, परीक्षा पत्र, और शोध पत्र सभी के लिए प्रयुक्त होता है।

जब जीवन में किसी शब्द का प्रयोग बहुत अधिक होने लगता है, तो प्राः इसकी शक्ति घट जाती है, और जब यह अत्यधिक रूप से भिन्नार्थक हो जाता है तो समाज इसके स्थान पर किसी निश्चत अर्थ वाले शब्द को ग्रहण कर लेता है इस हेर-फेर से दो-दो की जोड़ियां चल पड़ती हैं जिनमें से समाज द्वारा प्रबल रू से अनुमोदित अर्थ बना रहता है और दूसरा काल के गाल में समा जाता है कभी कभी कोई शब्द इतना अशक्त व कम प्रचलित (infrequent) रह जा है कि मन को चेतना से उसका विलोप अपने आप ही हो जाता है। अर्थ विकास का सभ्यता के विकास से गहन सम्बन्ध है। व्यक्तियों के समान प्रा शब्दों में भी अर्थ-पतन की प्रवृत्ति (pejoration) दिखाई देती है जिसके मूल कोई न कोई दार्शनिक दृष्टि से हेय अर्थ का चयन होता है। एक प्रकार सांसारिक बौद्धिकता और निराशावाद ही प्रायः शब्दार्थों को ह्रासोन्मुख करते हैं मध्ययुगीन अंग्रेजी शब्द 'सेली' ('seli'='silly' of Modern English) उ व्यक्ति को कहा जाता जो कि "सुखी हो, जिसे आनन्दमय जीवन का वरद प्राप्त हो" लेकिन वर्तमान का शब्द (silly) 'मूर्ख' का पर्याय रह गया है। अ पतन दो रूपों में मिलता है (१) अर्थोपकर्ष (degradation of meaning) त (२) अर्थापकर्ष (upgradation of meaning) जिसमें कि अर्थ पूर्ण रूप बिगड़ जाता है। उदाहरणतया संस्कृत 'मधुर' का अर्थ 'मीठा' होता था कि जब तक 'मधुर' से माहुर' हुआ, इसका अर्थ 'विष' बन चुका था। दूसरी अ अर्थ उत्कर्ष (melirioration) भी संभव है। अंग्रेजी शब्द 'स्मार्ट' ('sma ∠German 'schmerz' 'Pain' ∠(s)mer-de-'rub') का संज्ञा के रूप अर्थ वास्तव में 'पीड़ा' था लेकिन विशेषण के रूप में अब इसका अर्थ 'चुस्त' गया है। प्रायः इतने परिवर्तनों के बावजूद भी शब्दों को उनके मूल अर्थों साथ टैक्नीकल भाषाओं और लोक साहित्य में देखा जा सकता है। तात्पर्य य है कि मानव जीवन के परिवर्तनशील मूल्यों के मध्य वहां की भाषा में अ परिवर्तन होता हो रहता है।

———

अधिकार युद्ध

—प्रकाश चन्द्र 'प्रेमी'

मानव को अधिकार का ज्ञान उसी समय होता है जब उसे अधिकार से वंचित रखा जाए। जब भी उससे अधिकार छीनने की कुचेष्ठा की जाती है तो वह उसकी प्राप्ति के लिए कटिवद्ध होकर संघर्ष करता है, भले ही उसे कई बार निराश और असफलता के अन्धकार-मय-कूप में गिरना पड़े। वह इस अन्धकार को चीर कर आशा के ज्योतिष्मय पथ की ओर अग्रसर होने का प्रयास करता है। इस के लिए वातावरण और परिस्थितियां उसका नेतृत्व करतीं हैं। यही हमारा इतिहास-अर्जित ज्ञान कहता है।

हर ओर जब अधिकार-चर्चा के संगीत की तान गुंजायमान हो उस समय जन साधारण पर सत्ताधारी साम्राज्यवादी युद्ध ठोंसने का असफल प्रयत्न करते हैं। सीमाओं पर विवाद खड़ा कर दिया जाता है। पड़ोसी देशों पर विविध प्रकार के आरोप लगाए जाते हैं। यही साम्राज्यवादियों की नीति रही है और ठीक इसके विपरीत जागृत जन-साधारण सत्ताधरियों पर युद्ध ठोंस देते हैं जिससे स्वयं को बचाने के लिए वे नए असफल मार्गों का अविष्कार करते हैं।

दार्शनिक विविध प्रकार से विश्व की केवल व्याख्या ही करते हैं किन्तु हमारे समक्ष प्रश्न तो विश्व को बदलने का होता है। दार्शनिक निष्क्रिय रहते हैं किन्तु जन-साधारण जो शोषण की चक्की के दोनों पटों के बीच पिस रहे होते हैं वह सक्रिय हो जाते हैं। पहले तो वह अपने अधिकारों को एक भिखारी की भांति मांगते हैं, परन्तु इसमें उन्हें सफलता मिल जाए यह सम्भव नहीं। अतः वह इसको छीनने के लिए प्रचण्ड-रूप धारण कर लेते हैं। विश्व

के बदलने के लिए साधारण कटिवद्ध होकर अपने पथ की ओर बढ़ते हैं अ
कथनी के क्रान्तिकारी इतना ही कह सकते हैं "शिवस्ते पन्थानाम्"। अस्तु
उक्त समस्या के समाधान के लिए सत्ताधारियों और जनता के बीच शासकों
शासितों के बीच शोषितों और शोषकों के बीच अन्तर्द्वन्द बढ़ता है। दोनों
से वर्वरता का नाद होता है जो उक्त समस्या के समाधानार्थ अनिवार्य होता है

इसे ही हम वर्ग-संघर्ष कहते हैं। वलवान विजयी होता है और दू
पराजित। इतिहास साक्षी है। वर्तमान स्थिति में यतः जन-साधारण
अधिक वलवान है अतः शत प्रतिशत उसी की विजयी होगी।

साम्राज्यवादी यों भी कागज़ी वाघ होते हैं अतः इनकी पराजय नि
है। सैनिक जो साम्राज्य वादियों द्वारा प्रशिक्षित हैं; इनका जनसाधा
से गूढ़ सम्बन्ध होने के कारण जन-साधारण का साथ देना अनिवार्य है (इ
वरिष्ठ अधिकारी सम्मिलिन नहीं) अतः यह सिद्ध होता हैं कि इन परिस्थि
में जनसाधारण के लिए अनुकूल-पवन चल रहा है। आईए अब इस दर्पन
समक्ष रख कर यह देखें कि पाकिस्तान और बंगला-देश पर यह तथ्य कहां
ठीक है।

पाक सत्ताधारी दल ने १९४७ से आजतक बंगला-वासियों को अधि
से पूर्णतया वंचित रखा। यदि उन्होंने (बंगला-वासियों ने) सहिष्णुता
सहनशीलता दिखलाई तो सत्ताधारी-दल ने इसे कायरता समझा। यही स
बड़ी भूल है। यदि उन्हें इस बार अपने भाग्य-निर्माण करने का अवसर मि
तो शोष्कों ने पारस्परिक सांठ-गांठ से पुनः उन्हें दल-दल की ओर धकेलने
प्रयास किया। यह सोए हुए सिंह को मांद में जाने का कुचेष्टा नहीं तो
क्या है। पाक सत्ताधारियों अर्थात् सेनाधिकारियों ने सैन्य वल से जन-संघर्ष
दमन करना चाहा। न जाने यह लोग इतिहास के अनुभवों को क्यों कर
जाते हैं। लोक-युद्ध का सैन्यवल द्वारा दमन सर्वथा असम्भव है। यदि
सम्भव होता तो रूस में लैनिन, चीन में माओ भारत में नेता, भक्त तथा उ
साथियों को कोई पता न होता।

इसमें पाक-अधिकारियों का कोई दोष नहीं। ऐसे ही लोगों के लिए
जार्ज वर्नार्ड शॉ ने बहुत पहले कहा था, "Nine out of ten soldiers
bornfool". और यह बात यहां अचांरशः यथार्थ सिद्ध होती है। क
की संक्षा में लोग क्षुधा की प्रचण्डाग्नि में दग्ध होते हुए अल्प संख्यक शोषकों

आनन्दमय जीवन बिताने का खुला अवकाश दे दें! यह सर्वथा असमभव है। अधिकार प्राप्ति के लिए मानव युगों से संघर्ष-रत रहा है, फिर आज यह किस प्रकार सम्भव न हो कि अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिए वह संघर्ष न करे। याहया खां की "डिश" में सैंकड़ों रुपयों की व्हिस्की है और बंगाली को उदर-पूर्ति के लिए साधारण भोजन भी प्राप्त न हो। यह क्रूरता है! शोषण है!! वर्बरता है!!! और सर्वोपरि नोचता है!!!! निर्धन पाकिस्तानियों का उदर वाट कर सैनिक सत्ताधारी दल सैन्य-बल बनाने का प्रयास तो पिछले चौबोस वर्षों से कर रहा है, किन्तु कभी भी जन साधारण की स्थिति को सुधारने का प्रयास उसने आज तक नहीं किया। जो धन राशि सैन्य-बल-निर्माण के लिए व्यय की गई यदि यह जन साधारण के हित के लिए की गई होती तो आज पाकिस्तान आत्म-निर्भर होता। उसे आज अमरीका तथा अन्य साम्राज्य वादियों के उपनिवेश बनने का भय त्रस्त न करता। आगामी तीन पीढ़ियों तक को इन लोगों ने विदेशी ऋण की अग्नि में झुलस के रख दिया। यही कारण है कि पाकिस्तान में असन्तोष चर्म-सीमा तक पहुंच गया है।

मानवता का हत्यारा पाक-तानाशाह मानव जाति को बंगला-देश से नष्ट करके यह दावा करता है कि उसका निजी और आन्तरिक मामला है। सच है, "विनाशकाले विपरीत बुद्धि"। निहत्थे लोगों का रक्त-पात करके वीरता का प्रदर्शन करना शोभा नहीं देता। कहां हैं आज इस्लाम के पुजारी जो इस्लाम के सिद्धान्तों को बोलते नहीं थकते? क्या उनका यह ज्ञान पोथियों तक ही सीमित है। दूसरों को उपदेश देना ही जानते है, स्वयं उसे क्रियात्मक रूप देने के लिए लज्जा आती है। क्यों न हो "परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकर नृणाम्"।

बंगला-देश के इस नाटक का यह दृश्य तो हमने केवल उदाहरणार्थ ही प्रस्तुत किया। ऐसा दृश्य और मृत्यु का यह नग्न ताण्डव देखकर अन्य देशों के शोषकों को भी सम्भलना चाहिए वरन् क्रान्ति की इस बाढ़ में सभी बह जाएंगे। अधिकार छीनने के लिए बड़े से बड़ा बलिदान भी दे देते हैं। अब संसार के कतिपय देशों के सत्ताधारी साम्राज्यवादी शोषितों और पीड़ितों को अधिक देर के लिए अन्धकार में नहीं रख सकते।

"मनुष्य को उनकी ही वस्तु पर अपना अधिकार रखने की चेष्टा करनी चाहिए जितने से उदर-पूर्ति हो जाए। इससे अधिक जो अपनी समझता है वह दण्ड का अधिकारी है।" ऐसा ही कतिपय महानुभावों का मत है।

———

समय के मोड़ और सृजन

—राम कुमा

उम्र का कारवां बिना रुके एक गति के साथ चलता है और हर प
को लांघता हुआ-अपनी मंजिल पर पहुँच कर खामोशी में विलीन हो जाता
कुछ लोगों की धारणा है कि उम्र का हर मोड़ और हर पड़ाव आदमी की सृ
शक्ति की चुंगी लेता रहता है - और आखिरी मोड़ पर आदमी को लगता है
उसकी रचनात्मक पूंजी करीब करीब खर्च हो चुकी है। लेकिन दुनियां के अ
सृजकों के जीवन पर दृष्टि डालें तो इस बात में ज़्यादा वज़न नहीं रह पाये
उक्त धारणा के विपक्ष में कहा गया है कि सृजन शक्ति का उम्र से कोई रि
नहीं है। उम्र के साथ साथ आदमी की रचनात्मक शक्ति का ह्रास
होता है।

जॉन मैसफील्ड का कहना है कि आदमी के शरीर में दोष हैं, उस
मस्तिष्क अविश्वसनीय है लेकिन उसकी कल्पना कमाल की है। कल्पना के पं
पर चढ़कर ही आदमी बाह्य और भीतरी दुनियां की शोध करता है और कल्प
के पंख उसे सृजन की शक्ति देकर फड़फड़ाते रहते हैं।

यह रचनात्मक शक्ति केवल असाधारण व्यक्तियों में ही नहीं होती बल्
हर आदमी के दिमाग और दिल के धागे सृजन शक्ति से गुत्थ हुए होते हैं।
व्यक्ति मौलिक है। हर व्यक्ति रचना कर सकता है, भले हो वह सर्वोत्कृष्ट रच
को जन्म न दे सके परन्तु एक खूबसूरत रचना का निर्माण तो कर ही सकता है
एडीसन का तो यहां तक कहना है कि जहां तक सृजन का प्रश्न है—यह ए
प्रतिशत प्रेरणा से उत्पन्न होता है तो ९९ प्रतिशत श्रम का फल हैं। जिस प्रका

शरीर, जो कि उम्र के थपेड़ों से चुकता जाता है को श्रम और अभ्यास से एक लम्बे समय तक ताजा और शक्ति युक्त रखा जा सकता है तो फिर मन और हृदय जो इन दोषों से मुक्त हैं, उन्हें सृजनशक्ति से पूर्ण रखना क्या मुश्किल है। मार्कटियर कान्निन्स कहते हैं कि आदमी यदि अनुभव करे कि वह वृद्ध हो चुका है तभी वृद्ध होता और स्त्री जितनी वृद्ध दिखाई दे उतनी उम्र की होती है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि सृजनशक्ति और उसके पीछे जो भावना की गति है, वह स्वयं समय के साथ क्षीण नहीं होती बल्कि उम्र के साथ साथ यदि आदमी यह सोचने लगे की उसकी रचनात्भक शक्ति भी क्षीण होती जा रही है, तो इसके लिए उसका अज्ञान और उसकी कमजोरी जिम्मेवार है। सृजनशक्ति अभ्यास और श्रम से धीरे धीरे विकसित होती है और आदमी जीवन के ढलान पर भी सृजनशक्ति को तरो-ताजा और पुष्ट रखते हुए काम कर सकता है। जितना प्रयास होगा, उसी मात्रा में उम्र के साथ साथ रचनात्मकता में बढ़ोतरी होती जायेगी। सामरसेट माम का विश्वास है कि—कल्पना अभ्यास से बढ़ती है और इस आम धारणा को झुठलाती है कि युवक परिपक्व व्यक्ति के बजाय विचारों के ज्यादा करीब होते हैं।

सुकरात का नाम सब जानते हैं। उम्र के अन्तिम मोड़ पर याने ७१ वर्ष की उम्र में भी सुकरात विचारों से जवान और उसकी सृजनशक्ति की लौ पूर्ण-प्रकाश के साथ जगमगा रही थी। मनोवैज्ञानिकों ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है और कहा है कि आदमी की रचनात्मकता या सृजनशक्ति जितनी ३० वर्ष की उम्र में होती है उतनी ही ८० वर्ष की उम्र में भी हो सकती है। यद्यपि उम्र के साथ स्मरण शक्ति में कमी आ जाती है परन्तु सृजनात्मक प्रवृत्तियां उम्र से अप्रभावित रहती हैं। अनेकों ऐसे सृजनकार मिलेंगे जिन्होंने संसार की सर्वश्रेष्ठ रचनाएं उस समय की जबकि वे उम्र के अन्तिम मोड़ पर पहुंच चुके थे। उनकी रचनाओं में कहीं भी सृजन निर्बल और अस्वस्थ नहीं लगता। एक युवा हृदय से उठने वाली जवान तरंगों की सनसनाहट और ताकत उन रचनाओं में मिलेगी। अंग्रेज़ी का महान मिल्टन क्या कहीं अपनी उन रचनाओं में बूढ़ा लगता है जो उसने ६० वर्ष की आयु के उपरान्त लिखीं।

रचनात्मकता तभी खत्म होती है जब व्यक्ति उसका उपयोग नहीं करता। मोनालिसा की मुस्कान को अमर करने वाले जादूगर चित्रकार लियानार्डो ने इस सन्दर्भ में लिखा है—लोहा उपयोग में न लिए जाने से जंग खा जाता है, एक ही जगह पड़े पड़े पानी अपनी शुद्धता खो बैठता है और ठंडे मौसम में जम जाता है, इसी प्रकार अकर्मण्यता मानसिक शक्ति को चाट जाती है।

मनोविज्ञान के आधार पर भी इस तथ्य की पुष्टि हुई है कि एक रचनात्मक शक्ति अपने यौवन पर आ जाती है तो फिर वह कम्पित नहीं हो सिसरो ने तो इस बात को भी गलत साबित किया है कि आदमी अधिक उ अपनी स्मरण शक्ति खोने लगता है। उनका कहना है—उम्र पर यह इल है कि वह बुढ़ापे में स्मरण शक्ति को दुर्बल कर देती है। लेकिन मैंने यह नहीं सुना कि एक आदमी यह बात भूल गया कि उसने धन कहां छिपाया

सेमुअल जौन्सन इस संदर्भ में बहुत ही तीखी बात कहते हैं कि यह पूर्व और भ्रम है कि एक व्यक्ति की बुढ़ापे में बौद्धिक शक्ति क्षीण हो जाती है।

उन्होंने एक उदाहरण देते हुए अपना विचार प्रस्तुत किया है कि एक युवक या अधेड़ व्यक्ति अपने साथियों से बिछुड़ते समय कहीं यह भूल ज है कि उसने टोप कहां रखा, तो इस पर किसी को एतराज नहीं होगा लेकिन यह भूल एक वृद्ध से हो जाये तो लोग अपना कंधा हिलाकर कह देंगे उसकी स्म शक्ति जा रही है।

अतः यह कहना कतई ठीक नहीं कि उम्र के हाथों सृजनशक्ति लुट ज है। सृजन शक्ति को संवारते रहने से वह सौ वर्ष की उम्र के हाथों में भी उ ही तेज धार के साथ चमकेगी जितनी वह एक उम्र के चढ़ान पर खड़े व्यक्ति अन्दर।

सृजन शक्ति उस रोशनी की तरह है जो बिना क्षीण हुए अपनी लौ बराबर बनाते हुए प्रकाश छिटकाती रहती है—उम्र का तनाव और बांक कम हो सकता है। लेकिन सृजनशक्ति का तनाव और बांकपन कैलेण्डर तरफ नहीं ताकता; वक्त आदमी के शरीर को चुनौती दे सकता है लेकिन उस सृजनशक्ति वक्त से हार नहीं मानती—वह समुद्र की तुफानी लहर है— जो किना से टकराकर टूट जायेगी बिखर जायेगी—पर उसकी लहरों में समाया उद्वेलि यौवन किनारे से मिलने के इरादे में निरन्तर गतिमान और ताकवतर बनक चलता है।

सृजन जो आज से हजारों साल पहले हुआ और बड़ी उम्र के लोगों दिमाग से निकला—वह कहां ताजा नहीं है—कहां बूढ़ा और कमजोर लगत है? पानी एकत्रित होते होते एक समुद्र बन जाता है और लहरों का काफिल उसके दिल पर ज्यों चलता रहता है—वही गति सृजन की है— जो अपनी उम्र नहीं जानता। सृजन की कोई आयु नहीं होती।

यात्रा

"पुण्य भूमि गणेशपुरी"

—रत्नावली साठे

सद्गुरु नाथ भगवान नित्यानंद जो द्वारा स्थापित की गई नगरी पुण्य भूमि गणेशपुरी की यात्रा आए दिन बढ़ती ही रहती है। यह नगरी नित्यानंद भगवान के वास से ही जंगल से मंगल में बदल गई है।

सद्गुरु नाथ भगवान नित्यानंद जी इन जंगलों में तप करते रहे, परन्तु बहुत देर तक वे अपने आपको छुपा न पाए। आखिर कार भक्तों ने उन्हें ढूंड ही लिया। और दर्शनार्थ आनेवाले भक्तों ने आने-जाने का अच्छा रस्ता न होने कारण पेड़-वृक्ष इत्यादि काट-काट कर अच्छा खासा साफ रस्ता बन डाला। एक जंगल भरी राह को सुन्दर सड़क का रूप दे दिया। बाद में वहां पर बड़े-बड़े साफ मैदान बने, महलों की तरह ऊंची-ऊंची और शानदार इमारतें बनीं, दुकानें बनी, होटल खुले, पक्की सड़कें बनीं, नल और बिजली आए, पुलीस स्टेशन बना, स्कूल बना, हस्पताल खुला और इन सब से बढ़कर बाबा के निवास के कारण जंगल एक मंगल में बदल गया, एक छोटा सा गांव एक छोटा सा सुन्दर शहर बन गया, और उस शहर का नाम पड़ा पुण्यभूमि गणेशपुरी।

गणेशपुरी बम्बई (चर्चगेट) से 45 कि. मी. दूर है। चर्चगेट से वसई स्टेशन तक ट्रेन जाती है और फिर वहां से गणेशपुरी बस में जाना पड़ता है। वसई स्टेशन से गणेशपुरी 23 कि. मी. दूर है। गणेशपुरी स्थान पहाड़ों की गोद में बसा हुआ है। वसई से गणेशपुरी तक पहुंचते पहुंचते मन खुश हो जाता है और वहां पहुँचने की उत्सुकता दुगुनी बढ़ जाती है। सारे सफर में चारों

तरफ पहाड़ ही और आस-पास खेत, हरे-भरे वृक्ष फल-फूल इत्यादि देख कर मन खुश हो जाता है। गरोशपुरी आते समय रास्ते में तुंगारेश्वर पर्वत भी आता है जोकि काफी ऊंचा और वीरान है। यहां साधु महात्मा आकर तप करते हैं। वैसे सबसे पहले बाबा यहां पर तप करते पाए गए थे। गरोशपुरी अब स्वयं तो छोटा सा शहर बन गया है परन्तु सुबह सुबह मंदाकिनी पर्वत के पीछे से सूर्योदय का निरीक्षण करने में तथा शाम को तामसा नदी के पीछे होते हुए सूर्यास्त का निरोक्षण करने में जो मन को आनंद मिलता है उसका शब्दों में वर्णन करना कठिन है।

"बाबा" कहने में भक्तों को जो अपनापन मिलता है वह भगवान नित्यानंद या गुरुदेव नित्यानंद कहने में जरा कम ही मिलता है। गुरुदेव नित्यानंद जी के जन्म का ठीक से अन्दाजा लगाना असंभव ही है। वैसे सुना जाता है कि बाबा का जन्म मंगलूर में किसी अच्छे घराने में हुआ था परन्तु भक्तों ने पांच वर्ष की आयु में ही नंग धडंग शरीर से जंगलों में फिरते और वृक्षों पर बैठे हुए पाया। कई भक्तों ने उन्हें मंदिरों में देखा। भक्तों की नजर हर बार, हर कहीं बराबर पहचान् लेती और फिर क्या, जहां पर बाबा होते वहीं पर लोगों की भीड़ लग जाती और अंत में बाबा वहां से चल कर कहीं दूसरे स्थान पर जाकर अपने आपको छिपाने का प्रयत्न करते। कई भक्तों ने उन्हें बचपन में मंगलूर में तो बड़े होने पर गाबगापूर में देखा तो कईयों ने तुंगारेश्वर पर्वत पर देखा परन्तु भक्तों ने अन्तिम बार उन्हें गरोशपुरी में ही देखा।

बाबा गरोशपुरी में पुराने शिवमन्दिर में तप करते थे। मन्दिर के बाहर ही गरम पानी का स्रोत है। वह पानी गन्धकयुक्त है। बाबा उस गरम पानी के कुंड में स्नान करते और शिव मन्दिर में बैठकर तप करते। परन्तु बाबा यहां पर कब से तपस्या करते थे इसका अनुमान लगाना असंभव है। कहते हैं कि मदांकिनी पर्वत ऋषियों का स्थान है और यहां पर चिरंजीवी परशुराम जी का मन्दिर है। कई लोगों का कहना है कि बहुत पहले वहां के जंगली लोगों ने कई बार सुबह नदी किनारे की गीली रेत में बड़े-बड़े पांवों के चिन्ह देखे थे, जो कि थे तो मानव के पांव जैसे ही परन्तु आकार में अत्याधिक बड़े और वह चिन्ह नदी से लेकर मदांकिनी पर्वत की तरफ जाते हुए दिखाई देते थे। ऐसा भी सुना जाता है कि मंदाकिनी पर्वत पर से ऋषि लोग सुबह तीन बजे के करीब तामसा नदी पर आते थे, स्नान इत्यादि करके बाबा को प्रणाम कर व कुछ वार्तालाप करके वे वापिस मदाकिनी पर्वत की तरफ चले जाते थे। खैर कुछ भी हो परन्तु

यह निश्चित् है कि बाबा वहां पर कब से थे इसका ठीक अन्दाजा अब तक कोई न लगा पाया। परन्तु जंगली लोग इतने विशाल मानव पग चिन्ह् को देखकर विस्मित अवश्य हुए। उसके बाद कई लोगों ने वज्रेश्वरी देवी के मन्दिर में (जोकि गरोशपुरी से दो मील की दूरी पर है) बाबा को ध्यान मग्न देखा। बहुत बार लोगों ने इस विशालकाय रूपो बाबा को कपड़े दिए, लंगोट दिए परन्तु हर बार बाबा कपड़े फैंक कर वहां से भाग जाते।

एक बार को बात है कि वहीं से एक अर्थी जा रही थी और अर्थी के साथ जाने वाले मनुष्य राम नाम कहते हुए और विलाप करते हुए जा रहे थे। अचानक बाबा की नज़र उन पर पड़ी। उन्होंने उन लोगों को पास जाकर कहा, अर्थी नीचे रखो बाबा को बात सुन सभी व्यक्ति आश्चर्य चकित हो अर्थी नीचे रख बैठे, और उन लोगों के आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा जबकि उन्होंने मृत मनुष्य को 'हरे राम हरे राम' करते उठते देखा। बाबा का यह चमत्कार देख वहां पर एकत्रित हुए सभी मनुष्य बाबा के पांवों पड़ गए और बाबा को फिर से वस्त्रादि पहनाए परन्तु बाबा वहां से भाग गए। परन्तु भक्तों ने बाबा को पुनः ढूंड निकाला। क्योंकि बाबा गरोशपुरी के जंगलों में ही रहते थे। भला भक्तों से बाबा कब तक छिपे रह सकते थे? भक्तों ने अपने सेवा भाव और प्रेम से बाबा को चारों ओर से घेर लिया। गांव के छोटे-बड़े बच्चे चौबीस घण्टे बाबा को घेरे रहते। लड़के-लड़कियां सभी बाबा की मालिश करते, हाथ-पैर दबाते। बाबा के शरीर को छूने मात्र से ही बच्चों के हाथों में चन्दन और कस्तुरी की सुगन्धि आने लगती, जोकि बच्चे घर जाकर अपने माता-पिता को सिंघाते तो सभी आश्चर्य चकित हो जाते क्योंकि बाबा कभी इन चीजों का उपयोग न करते थे। अब तो सभी लोग बाबा के पीछे पड़ने लगे और अबकी बार बाबा कहीं भाग न सके। बाबा के दर्शन मात्र से ही मानव हृदय को शांति मिलती और जीवन की उलझनें खुद ही सुलझ जातीं। मानव माने या न माने परन्तु यह बात सत्य है कि मानव की आत्मा को आवाज से ही दत्तात्रय का अवतार (बाबा) हुआ था। जन्मजात योगिराज सिद्ध पुरुष नित्यानंद जी के आगे दुनियां झुक गई और भक्तों के मन की मुरादें पूरी होने लगीं। विश्वास बढ़ने लगा। नास्तिक दुनियां भी बाबा के दर्शन से आस्तिक होने लगी। अपनी-अपनी मनोकामना पूर्ण होते ही भक्तों की श्रद्धा इतनी उमड़ पड़ती कि वह कपड़ों के, फल-फूल और खाद्यान्न के ढेर लगा देते। परन्तु बाबा हर वस्तु गांव वालों को और सभी बच्चों को बांट देते थे? भक्त क्या-क्या अर्पण नहीं करते थे? श्रद्धा

और विश्वास के साथ-साथ जब बाबा भक्तों के दिलों में बस चुके तो भक्त दुनियां की तमाम सामग्रियां बाबा के चरण-कमलों में अर्पण करने लगे। परन्तु बाबा के लिए यह सब कुछ मिट्टी तुल्य था। सो वे सब कुछ बांट देते। अपना शरीर ढकने के लिए एक लंगोट तक न लेते थे। बाब अपने से बातें करते रहते थे। वे कभी किसी का न तो दुखड़ा पुछते थे और न ही कोई प्रश्न। वे अपने आप से स्वयं ही प्रश्न पूछते थे और स्वयं ही उत्तर भी दे देते थे और सामने बैठे हुए सैकड़ों लोग अपने प्रश्नों का उत्तर पा शांत हो जाते और सब कुछ समझ जाते। इस दुनियां में रहने वाले लोगों की मनोकामना पूर्ण होने का आशीर्वाद बाबा से जिस जिस को मिला वही अमर सुखो बन गया। जिसे बाबा ने गाली दी, पत्थर मारा या फल-फूल फैंका समझो उस मनुष्य के सभी दुःख दूर हो गए और यहां पर प्रत्यक्ष रूप में देखा जा रहा है कि युचन्द्र गांव के एक परिवार की बात है। पति-पत्नी दोनों निसंतान थे। बाबा के आगे उन्होंने यही मांगा कि उनके घर पुत्र हो। बाबा ने उन्हें बेटा होने का आशीर्वाद दिया और साथ में कहा कि यह लड़का बारह वर्ष तक ही तुम्हारा है, उसके बाद उसका मोह छोड़ देना और यह जहां भी जाए जाने देना। सचमुच आज से बारह वर्ष पूर्व उनके घर एक लड़का हुआ था। बारह वर्ष का वह इकलौता बेटा बाबा की देन थी। एक साल हुआ उस बालक के वारह बर्ष पूर्ण हुए। अचानक एक दिल बालक मां से कहने लगा कि, अब मैं यहां न रहूंगा, मेरा दिल इस घर (संसार) में नहीं लगता और कुछ दिनों बाद बह बालक घर छोड़ निकल पड़ा। पुत्र स्नेह को मां-बाप छोड़ न सके। अपना घर बाहर जमीन, सोना-चांदी सब कुछ लोगों में बांट कर वह दोनों भी बेटे के पीछे-पीछे चल पड़े। अभी कुछ महीनों से वह बालक तुंगारेश्वर पर्वत पर बैठ कर ध्यान कर रहा है। जब इच्छा होती है गणेशपुरी बाबा के दर्वन करने के लिए समाधि पर आता है। परन्तु वह बालक किसी से बात-चीत नहीं करता। हर समय ध्यान मग्न रहता है। जब कहीं जाने की इच्छा होती है तब चुपचाप चल पड़ता है और मां-बाप सेवक की तरह हर दम उसके साथ रहते है। वारह वर्ष का वह बालक सिर्फ गेरुए रंग के चोले में ही इतना तेजस्वी लगता है। उसकी साधना अभी चालु है।

यह तो मेरी आंखों देखी बात है। बाबा की चमत्कारिक घटनाएं भक्तों द्वारा सुनने पर ही मालूम होती हैं। बाबा के प्रति भक्तों को श्रद्धा और विश्वास है, जो चमत्कार के कारण है। चमत्कार देखे बिना कोई भी इतनी श्रद्धा और विश्वास नहीं रखता और न ही अपना प्राणाधार मानता है। बाबा की कीर्ति जैसे २ फैली

वसे २ अनजान भक्त अनजान राह पर चल पड़े बाबा के दर्शन करने के लिए। कहा जाता है कि उत्तर भारत की तरफ किसी छोटे से गांव में एक साधारण मनुष्य को बाबा ने सपने में दर्शन दिए और कहा, "तुम गणेशपुरी न आओगे" दूसरे दिन सुबह उठकर उस व्यक्ति ने गणेशपुरी जाने का निश्चय कर लिया। परन्तु उसे तो बिलकुल कुछ पता न था। कैसे भी करके पूछताछ करता हुआ वह बम्बई पहुंचा। वहां से पूछ-ताछ करके वह बसई स्टेशन तक पहुँचा वहां पहुँचने पर वह परेशान हो गया कि अब कहां, किस ओर और कैसे जाया जाए। भूख प्यास से व्याकुल, पैसा एक भी पास में नहीं। इसी परेशानी में वह खड़ा सोच रहा था इतने में बाबा स्वयं एक साधारण मनुष्य का वेष धारण कर प्रकट हो गए और उस मनुष्य को गणेशपुरी का ठीक ठीक पता बता कर और किराए के कुछ पैसे देकर स्वयं अन्तर्धान हो गए। थोड़ी देर बाद जब वह भक्त गणेश-पुरी पहूंचा तो उसे ज्ञात हुआ कि बाबा ने आज तीन दिन से दर्शन नहीं दिए। हाल के सभी दरवाजे बन्द थे और लोगों की अपार भीड़ तीन दिन से दर्शनार्थ खड़ी थी। अचानक हाल के दरवाजे खुले और जनता दर्शन करने लगी। जब उस भक्त का नंबर आया तो वह बाबा को देख कर पहचान गया और आश्चर्य चकित हो उठा क्योंकि यह तो वही बाबा थे जिन्हों ने सादी वेषभूषा में आकर उसे रास्ता बताया था। वह भक्त एकदम जाकर बाबा के पांवों से लिपट गया। इसी तरह कितने ही और चमत्कार हैं जिनसे जनता अत्यधिक प्रभावित हुई। एक बार एक औरत (बाबा की भक्त) ने अपने घर पूजा करवाने का निश्चय किया और बाबा को भोज पर आमंत्रित कर कहने लगी, "जब तक आप न पहुंचेंगे हम पूजा न करेंगे।" खैर पूजा का दिन आया। उस औरत ने अनेक पदार्थ बनाए और अब पूजा के लिए वह व्याकुल होकर बाबा की राह देख रही थी। इतने में एक बिल्ली आई और खीर के बर्तन में मुंह डाल खीर खाने लगी, बिल्ली को खीर खाते देख महिला ने डंडे से उसे मार भगाया। उस के बाद वह सारा दिन राह देखती रही परन्तु बाबा न आए। चिन्ता और व्याकुलता से उसने सारी रात जाग कर निकाली और सुबह होते ही गणेशपुरी की ओर चल पड़ी। जब वह बाबा के पास पहुंची तो बाबा हंस दिए। जब महिला ने प्रश्न किया, "बाबा आप क्यों नहीं आए ?" तो बाबा ने हंसते हुए कहा, 'मैं तो आया था और भोजन भी किया था।" और इतना कहते ही उन्हों ने पीठ पर पड़े हुए डंडे के निशान दिखाए। जिन्हें देख कर महिला आश्चर्य चकित हो उठी और घबराकर कांपने लगी और बाबा से अपनी भूल के बारे में क्षमा मांगने लगी और रोने लगी इस

पर बाबा ने उसे सरल भाव से हंसते हुए माफ कर दिया। ऐसी और भी
घटनाएं हैं जिन्हे लिखने पर एक उपन्यास तैयार हो सकता है। जब भक्तों
बाबा पर इतना दृढ़ विश्वास हो गया तो उन्होंने वहां पर बड़ी-बड़ी बिल्
बनवाई, उनमें गृहस्थी का पूरा सामान रखवाया और बाबा के नाम पर कर
जिस कारण दर्शनार्थ आने वाले भक्त वहां पर रह सकें, गर्म पानी में स्नान
सकें। कई लोग जो कि कोई मद्रास तो कोई कलकत्ता, कोई दिल्ली तो
बम्बई इन दूर-दूर के शहरों में रहते हैं परन्तु बाबा की महिमा सुनकर हर
दौड़ा-दौड़ा आया और बाबा के दर्शन पा कर अमर शान्ति पा गया, उन्हीं
ने वहां पर बाबा के नाम बिल्डिगें, स्कूल, हस्पताल, मन्दिर, विश्रांति गृह,
बिजली इत्यादि सब कुछ बनाया। बच्चों के लिए नि:शुल्क बालभोजन और
तथा नि:शुल्क हस्पताल खोले। हां, दर्शनार्थ आकर जो बिल्डिगों में ठहरते हैं
किराया बाबा के नाम ट्रस्ट में जमा होता है। कई गरीब व्यक्तियों को (भ
को) बाबा ने मदद दी और उन्हे वहीं पर दुकानें खोल दी, घर बना दिए।
स्थान पर, हर कण कण पर बाबा का पैसा लगा, बाबा का आशीर्वाद मिला
यह स्वच्छ, सुन्दर और रमणीक तथा पूज्य नगरी बन गई। और बाबा के सह
के कारण देवभूमि कहलाई। बाबा की इस नगरी में हर इन्सान, हर जीव
खुश था, बाबा के आशीर्वाद के कारण सभी बाबा को ही अपना माता-
मानते थे। हर तरफ खुशी और हरियाली के बादल छाए हुए थे।

परन्तु अचानक एक दिन की बात है। 1960 में जुलाई मास की
पूजा भक्तों से करवाने के ठीक बारह दिन बाद द्वादशी के दिन बाबा ने सम
ले ली। समाधि लेते समय वे बंगलूरी बिल्डिग में थे। परन्तु वे पहले ही
भक्तों से कह चुके थे कि मेरी समाधि उसी पुराने हाल में बनाना जो कि
मन्दिर के सामने है।

1960 में जब बाबा ने समाधि ली उस दिन बम्बई नगर की सभी
ट्रेनें नि:शुल्क गणेशपुरी जा रही थीं। उस समय तक मुझे बाबा के बारे में कोई
न था। उस दिन समाचार पत्रों में हर तरफ बाबा की ही खबरें थी। उन
कीर्ति सुन कर रोंगटे खड़े हो जाते थे। परन्तु उस समय पश्चाताप और दुःख
आंसू बहाने सिवाय कोई चारा न था, बाबा के दर्शन करने की अभिलाषा
में ही रह गई। बाबा के भक्तों की भीड़ बम्बई से गणेशपुरी तक लगी हुई थी
बाबा को जब बंगलूर वाली बिल्डिंग से शिवमन्दिर वाले हाल में समाधि देने
लिए लाया गया तब लाखों भक्तों ने श्रद्धा के फूलों के साथ-साथ रुपए, पैसे, सो

इत्यादि जो कुछ हुआ सब कुछ बाबा के अर्पण कर समाधि में डाल दिया। रोती बिलखती महिलाओं ने अपने शरीर पर जो भी आभूषण था समाधि में भेंट कर दिया। जैसे राम के चले जाने से अयोध्या सूनी पड़ी थी, वैसे ही बाबा के समाधि लीन होने पर गणेशपुरी सूनी पड़ गई। भक्तों के सिर पर से बाबा की छत्र-छाया उठ जाने से वे ऐसे हो गए मानों उनका इस संसार में अब कोई रहा ही नहीं। अब वहां पर (समाधि पर) बाबा का आदमकद एक बड़ा फोटो स्थापित किया गया है जो चौबीसों घण्टे फूलों से लदा रहता है। यहां पर हर रोज समाधि पर बाबा की चार आरतियें उतारी जाती हैं। प्रातः चार बजे, फिर छे बजे, दुपहर को बारह बजे और रात को आठ बजे। और शाम को आरती होने से पूर्व एक-डेढ़ घण्टा लोग एकत्रित होकर हर रोज बाबा का भजन करते हैं जैसे :-

श्री कृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द,
हरे राम हरे कृष्ण राधे गोबिन्द।

इन्हीं नामों के साथ और कई शब्द जोड़े गए हैं। बाबा के प्रति प्रेम भक्ति के गीत जो आरती के समय गाए जाते हैं, उन्हें सुनकर बाबा के बिरह में किस भक्त की आंखों से अश्रुधारा नहीं बहती? बाबा का समाधि मन्दिर दो वर्षों से बन रहा है, अब तक उस पर नौ लाख रुपए खर्च हो गए हैं, परन्तु अभी तक मन्दिर पूरा नहीं हुआ! एक वर्ष के अन्दर शायद वह पूर्ण हो जाए।

यहां पर जगह-जगह पर गर्म पानी के कुण्ड हैं जिनमें स्नान करने से शरीर स्वस्थ हो जाता है। बातयुक्त मनुष्यों के लिए यहां पर स्नान करना अत्यंत लाभदायक है। पक्षाघात जैसी बिमारियों में भी काफी सुधार होता है। वैसे भी यहां पर मन को शांति मिलती है।

गणेशपुरी से एक मील की दूरी पर स्वामी मुक्तानंद जी का आश्रम है। आश्रम की व्यवस्था बहुत ही उत्तम ढंग से बाबा जी द्वारा चलाई जा रही है। आश्रम का परिचय हमें तब ही प्राप्त हो सकता है जब कि आश्रम में रहने का अवसर प्राप्त हो। वैसे स्वामी मुक्तानन्द जी महान विद्वान, ज्ञानवान और शिष्टाचारी तथा महापुरुष हैं। अपने जीवनकाल में कई बार भारत भ्रमण करने के बाद विदेशों का भ्रमण कर चुके हैं। लोग उन के चमत्कार से प्रभावित हो चुके हैं वे अपने घर बाहर त्याग कर उनके दर्शनों का लाभ उठाने आश्रम में ही रहते हैं और शांत सुख शांति को प्राप्त करते हैं। आश्रम में रहने वाले स्त्री-पुरुषों के लिए अलग-अलग व्यवस्था है।

———

लाल साड़ी दो हाथ

—कमला मथो[illegible]

जैसे कोई बच्चा जननी के वक्ष से लिपट कर गिड़गिड़ाता है वैसे ही नि[illegible]
शरद की कमीज़ से सटो हुई कह रही थी कौन सा घर मेरा ? मेरी गृहस्[illegible]
इस क्षण के अतिरिक्त कभी पहले भी आपने यह सोचा है कि यह भी [illegible]
नारी है इसे भो अपना घर चाहिये, अपनी गृहस्थी, अपना संसार चाहि[illegible]
एक आदेश पालिका के सिवाय और क्या स्थिति है यहां मेरी।

वस्त्र छुड़ाते हुए कुछ गम्भीर स्वर में शरद ने कहा—"मैं कुछ नहीं जा[illegible]
निर्मल। मैंने पहले दिन ही तुम्हें बता दिया था कि मौसी कुछ कड़ी तबीयत[illegible]
हैं, तुम्हें ही इनके अनुरूप अपने को ढालना पड़ेगा। तुम्हारा आशय मैं [illegible]
अच्छी तरह समझता हूँ, तुम चाहती होगी कि वे यहां नहीं रहे।

नहीं नहीं, मैं कभी ऐसा नहीं चाहती। मैं उनकी दासी बन कर प्र[illegible]
हूं। मैं उनकी जी भर कर सेवा करना चाहती हूँ पर वे ढंग से कराएं भी[illegible]
मीठी बन कर कराएं।

वे मीठी हों या कड़वी, यह सोचना हमारा काम नहीं है। हमारा क[illegible]
केवल अपने कर्तव्य का ध्यान रखना है।

मैंने कब त्रुटि आने दी है अपने कर्तव्य में ?

तो यह अनमनी सी क्यों बैठो हो ? खाना क्यों नहीं खाया तुमने ?
पूछता हूँ आज खाना क्यों नहीं खाया तुमने ?

भूख नहीं थी।

भूख नहीं थी ! मैं सब समझता हूँ ।

काश आप समझते ही ।

निर्मल की आंखों से जलते हुए दो कण निकल पड़े । आज उसके संयम का बांध टूटने लगा था । वह इतनी मुखर कभी न हुई थी । शरद बाहर जाने लगे कि उसने पुनः उनकी कमीज़ पकड़ ली और पूछा—भला मैं भी आप से कुछ पूछ सकती हूं ? क्या आप भी वास्तव में इसे मेरी गलती समझते हैं ? उनसे पूछ कर मैंने अंगीठी से पानी उतारा था और आपके लिये नाश्ता बनाने लगी थी । पांच दस मिनिट की तो बात ही थी । कितनी देर लग जाती आखिर आपके लिये, अपने स्वामी के लिये इच्छा से कुछ पका सकूं इतना हक भी नहीं है मुझे, मैं भी क्या गृहिणी हूँ ।

पर तुमने उनसे पूछा क्यों नहीं ?

पूछ लिया था, आप विश्वास कीजिये ।

नहीं पूछा था ।

क्या आप सचमुच यही समझते हैं ?

शरद कुछ कहें, इसके पहले ही द्वार पर आवाज़ हुई :—

प्रोफेसर साहब हैं क्या ? जी हां ! और लपक कर शरद बाहर निकल गए ।

विमूढ़ा सी निर्मल हैरान थी । वह बहुत सोचती पर समझ न पाती कि आखिर उससे कब और कहां गलती हो जाती है जो एकाएक उसके जीवन में तूफान मचा देती है । मौसी उससे भला चाहती क्या है । दो दिन भी शान्ति से नहीं बीतते कि कोई बवण्डर खड़ा हो जाता है । वह कामचोर नहीं है । डट कर काम कर सकती है और अपने स्वास्थ्य का ध्यान न रखते हुए भी उसने बरावर काम किया है । आये दिन आने वाले रिश्तेदारों की सेवा का अवसर कभी छोड़ा हो ऐसा याद नहीं आता । फिर आखिर क्यों उसे हरदम उनकी आंखों में गिराने का प्रयत्न किया जाता है । भाभी जब भैया की कोई सेवा करती है तो मां कितनी प्रसन्न होती हैं । चार स्त्रियों में बराबर कहती हैं कि मेरी बहू तो सीता का रूप है कितना ध्यान रखती है पति का । भाभी और भैया दोनों उनकी इसी बात पर न्योछावर हैं । किन्तु यहां बिलकुल उल्टी बात है, मौसी कहती है कि

वह मेरे बेटे की आदतें बिगाड़ रही है उसे जो भी मिल जाय खा लेता था, वह तो सन्यासी है उसके आगे पीछे फिरना क्या। वह कालेज जाएगा तो दरवाजे तक चली जाएगी, यह भी कोई लच्छन हैं, उसे सब से अधिक रंज आता है अपने पति पर वे उसे इतनी ओछी क्यों समझते हैं। देख कर भी नहीं देखते। कह देंगे कि दो तलवारों को एक ही म्यान में रखना है। जैसे मैं कोई अधिकार, कोई प्रभुत्व चाहती हूं। मुझे कुछ नहीं चाहिये, केवल घर के व्यक्ति का सा मान चाहिये, थोड़ा प्यार चाहिये। मैंने उनके आगे तो कभी मान नहीं किया फिर वे भी पराकाष्ठा पर ही क्यों पहुँच जाते हैं प्रायः ?

पर उसका यह चिन्तन अधिक देर न चल सका। बैठक से आवाज़ आई– ज़रा दो कप काफी के तो देना। निर्मल की आंखों में आंसू तथा ओठों पर मुस्कान एक साथ ही ढलक आई। जितने तपाक से उसे चाय और काफी का आर्डर हुआ करता उतने आवेग में और कोई बात न होती और वह सोचती—क्या लोगों के आतिथ्य में ही गृहपति धर्म की इति हो जाती है ? गृहस्थ का घर तो सही अर्थ में एक धर्मशाला के सदृश है जिसमें संसार भर के प्रति आत्मीयता अपेक्षित है। क्या इस संसार में गृहिणी को—पत्नी को कोई स्थान नहीं ? फिर वह सोचती, वह क्या अपने पति से स्नेह चाहती है, नहीं, वह स्नेह नहीं चाहती, उसे प्रतिदान की आकांक्षा नहीं वह तो केवल यही चाहती है कि उसके आराध्य उसकी पूजा को स्वीकार कर लिया करें। उसका सूना मातृहृदय इस बात के लिये तड़प उठता था कि भगवान उसे भी कोई ऐसी साकार सप्राण प्रतिमा दे जिसे वह जी भर कर प्यार कर सके और उसे इस प्यार पर एतराज़ न हो और शायद वही उसका अपराध है।

कई बार उसे अपने पति की एकान्त नीरसता पर आश्चर्य हुआ था। उसकी सखी विमल ने ससुराल से आकर कई मधुर अनुभव सुनाए थे। उसके पति ने अपने नाम से अंकित अंगूठी धीरे धीरे उसकी उंगली में पहनाई थी और साथ कहा था - अंगूठी में अंकित यह मेरा नाम ही न समझो मुझे तो लगता है जैसे मैं ही आज इसके मिस जन्म-जन्मान्तरों के लिए तुम्हारे कोमल हाथ में बन्दी बन गया हूँ। और कितना रोमांच हुआ था उसे।

निर्मल को आभूषणों का शौक नहीं था किन्तु सगाई के बाद एक बार उसे यह कल्पना अवश्य हो आई थी कि उसके प्रभु उससे पूछ रहे हैं—क्या उपहार लोगी रानी ? वह कुछ नहीं चाहती तो वे अत्यन्त सरलता से पूछते हैं—अच्छा

तो फिर बताओ तुम्हारी इच्छा का कोई काम ही फिर किया जाय। अब वह कह बैठती है—हमें भिखारियों को देख कर बहुत ही दुख होता है, कोई ऐसी व्यवस्था नहीं हो सकती कि लोग भीख मांगना बन्द कर दें।

वे मुस्करा उठते हैं। बढ़िया काम बताया है तुमने। अच्छी बात है इस ओर भी लग जाएंगे। ऐसा कह कर वे बड़े सहज भाव से उसे निहारेंगे कि वह लज्जा से सिहर उठेगी।

उसकी माता जी का स्वास्थ्य बहुत खराब रहने लगा था। डाक्टरों ने वायुपरिवर्तन के लिये समुद्र तट पर चले जाने की सम्मति दी थी। अतः इनका परिवार उसकी सगाई के बाद कुछ अरसे के लिये कलकत्ता चला आया था। इस यात्रा में उसने कई स्टेशनों पर भिखारियों को जूठी पत्तलों के लिये परस्पर लड़ते और धक्का-मुक्की करते देखा था। इनके डिब्बे में ही एक भद्र ब्राह्मण बैठे हुए थे जो अपनी वयस्का कन्या के विवाह के लिये द्रव्य संचय करने कलकत्ता जा रहे थे। उन्हें आशा थी कि उनके यजमान सेठ के दानकोष से उसकी सुपुत्री के विवाह का खर्च निकल ही आएगा।

न जाने कैसी कुरुचि हो आई थी निर्मल को यह सुन कर। मांग कर लोगों के आगे हाथ फैला कर बेटी का विवाह भला क्या करना? मन ही कैसे माना इनका? पर और निदान भी क्या था? कन्या का विवाह है नातेदारों को बुलाना पड़ेगा, बिरादरी में कुछ बांटना पड़ेगा, बारात की खातिर करनी पड़ेगी, दहेज़ भी कुछ देना पड़ेगा, तो इन सबका नियामक एक पिता की डूबती नौका का कर्णधार—रुपया कैसे तो आए। ब्राह्मण को यजमान के आगे हाथ फैलाना ही पड़ेगा, कन्या का विवाह जो है, पिता को अपने आत्मसम्मान को बेच कर चांदी के टुकड़े एकत्र करने ही पड़ेंगे। यह मांगना और देना चाहेगा ही, चलता आया है। इस परम्परा का ही जैसे विकृत रूप है भीख जब मनुष्य कण कण के लिए दूसरे की मनौती करता है, जाने-अनजाने सैकड़ों दुआएं देता है, इस देश का यह सत्य कितना वेदनाप्रद, घिनौना एवम् लोमहर्षक है।

तभी से निर्मल ने सोचा था कि समाज के इस कुत्सित रूप का ध्वंस कर उस पर नया शिलान्यास करना है। वह अपने पति के साथ जी जान से इस कार्य में जुट जाएगी।

हवा के झोंके के समान ही भावी कई वर्ष उसकी आंखों से गुजर गए।

वह कल्पना के द्रुतगामी पंखों पर उड़ चली, ऐसे काल में पहुँची जब उन दोनों के कड़े प्रयास से समग्र देश से भुखमरी दूर हो गई थी, लोग भीख नहीं मांगते थे, परिश्रम की रोटी खाते थे। और इसका श्रेय देश ने दिया प्रो. शरद कुमार और उनकी पत्नी निर्मल को। उसके अन्तस्तल में एक अद्‌भुत माधुर्य हिलोरें लेने लगा। उसने आखें मून्द लीं। समाधि तब टूटी जब पटना जंक्शन पर उसके पिता जी उसका कन्धा हिला कर पूछ रहे थे - क्या खाओगी बेटा ?

वह झेंप गई जैसे किसी ने चोरी पकड़ ली हो। इस छोटे से स्वप्न ने अथाह मस्ती ला दी थी उसके जीवन में किन्तु तभी तक जब तक उनका विवाह न हुआ था। विवाह हुआ, आराध्य से भेंट भी हुई और फिर दिन सरकते ही रहे पर उन्होंने उसके मन की बात कभी न पूछी और न अपनी बात कहने का ही उन्हें ध्यान या अवकाश था।

कई बार वह सोचती कि वह ऐसा चाहती ही क्यों है कि शरद उससे हिलमिल कर रहे। उसने अच्छा भला सुन रखा था कि वे बहुत गम्भीर है। पर गम्भीरता की उसकी अपनी ही एक कल्पना थी। जब वह एम. ए. की छात्रा थी तब भाषाविज्ञान में वाचस्पति मिश्र का प्रसंग पढ़ कर उसे कितना कौतुक हुआ था। पत्नी से भेंट हुई उनके विवाह के एक दो नहीं, पूरे अठारह वर्ष बाद। पका-पकाया खाना उन्हें मिलता, धुले हुए वस्त्र मिलते पर उन्हें यह कभी ध्यान न आया कि यह व्यवस्था आखिर कौन करता है। वे अपनी व्याकरण में ही अहर्निश तल्लीन रहते थे। एक सन्ध्या को दीपक को वर्तिका ठीक करते हुए किसी नारी हस्त पर उनका ध्यान जा पड़ा। अकचका कर वे पूछ बैठे :—

देवी तुम कौन हो ?

वह तपस्विनी नारी कुछ बोल न पाई। उसकी आंखों में जल उभर आया। अब वाचस्पति मिश्र को ध्यान आया कि यह तो मेरी पत्नी है जिसे अपनी साधना में मैं बिल्कुल भुला बैठा हूं और अब तो यौवन का स्वर्णिम काल भी बीत चुका है। उन्हों ने कृतज्ञ भाव से उससे यही कहा :—

देवी, मैं तुम्हारी इस तपश्चर्या का क्या प्रतिदान दे सकता हूं। भगवान ने चाहा तो मैं तुम्हें अमर सन्तान दूंगा। और उन्हों ने अपना ग्रन्थ 'सिद्धान्त-कौमुदी पत्नी को समर्पित किया। अपने विषय का यह अनूठा ग्रन्थ है।

तब निर्मल ने बार बार कहा था, "साधना हो तो ऐसी। सचमुच ऐसा एकनिष्ठ साधक तो सदैव वरणीय है।"

और तब दीदी ने कहा था—हां, भावना की उड़ान तो यह अच्छी है किन्तु अगर ऐसे किसी व्यक्ति से पाला पड़ जाय तो जीवन में जीवन कम और मृत्यु अधिक हो जाय।

हां, किन्तु चार्वाक दृष्टि से न ?

नहीं, किसी सामान्य दृष्टि से भी। ऐसा जीवन घोर नीरस और वैराग्यपूर्ण शान्ति में पलता है। और इसलिये वह सामान्य प्राकृतिक जीवन नहीं है। वह जीवन क्या जो परिवर्तन और विषमताओं की गहराइयों में न पला हो।

दीदी की बात तब जंची नहीं थी और मन ही मन निर्मल ने कामना की थी कि भगवान उसे किसी ऐसे ही एकनिष्ठ की सहधर्मिणी बनाए।

इच्छा फलीभूत होने पर विचार क्यों ? शरद उससे खुल कर नहीं बोलते तो उसे प्रसन्न होना चाहिये न कि व्याकुल। वह अवश्य प्रसन्न होती पर जब वह देखती है कि वे लोगों से अच्छा भला बोलते चालते हैं, बोलने में केवल उससे ही कृपणता रखी जाती है तो वह उद्विग्न हो उठती है। भाव-सागर में डूबते-उतराते किसी तरह उसकी जीवन नौका चली जा रही थी।

प्रो. शरद गणित के प्राध्यापक थे। अपने विषय के अच्छे ज्ञाता थे। कई पुस्तकें भी लिख चुके थे और बराबर किसी नई पुस्तक के प्रणयन के चक्कर में रहते थे। साथ ही कई संस्थाओं के कर्मठ सदस्य भी थे। यही कारण था कि वह घर में अधिक समय नहीं दे पाते थे और न देना ही चाहते थे शायद। वह संभवतः समझते थे कि मानव का हृदय और मस्तिष्क भी गणित जैसा स्थिर होता है। एक बार जब कोई बात किसी को समझा दी जाय तो आगे कोई तर्क या कैफियत सुनना उनके वश की बात नहीं थी।

उनके विवाह की प्रथम रात्रि थी। कितनी ही देर अपने बिस्तर पर वे शान्त भाव से बैठे रहे फिर निर्मल से बोले :—

देर हो गई है, नींद नही आई क्या आपको ?

जी ! निर्मल अकचका गई।

एक बात आप से कहना चाहता था निर्मल जी।

निर्मल अंगूठे से फर्श कुरेदती ई सोफे पर सिर नीचा किये बैठी थी।

शरद बोले—मैंने अभी तक एक सन्यासी की तरह निर्लिप्त भाव से जीवन

बिताया है। मैं समझता हूं आगे भी यही क्रम ठीक रहेगा। आप मुझे इसमें सहयोग देंगी न ?

फिर स्वर में कुछ आत्मीयता सी लाकर बोले मेरी शक्ति बनना निर्मल कमज़ोरी नहीं।

निर्मल स्तब्ध सी बैठी रही। एक दो साधारण पारिवारिक बातें भी हुईं।

फिर वे बोले– आप को ठंड लग रही होगी, बिस्तर पर लेट जाइए, आप जब कहेंगी बत्ती बुझा दूंगा। मुझे रोशनी में नींद नहीं आती।

नींद तो मुझे भी नहीं आती।

वह तो सुन्दर रहा। और वे बत्ती बुझाने को उठे।

निर्मल की दीदी ने सिखाया था कि जब स्वामी निकट आएं तो उनकी चरणवन्दना करना, अवश्यमेव करना। निर्मल के हृदय में भी अपने आराध्य चरणों के दर्शन की साध हो रही थी पर वातावरण में जैसे किसी तपस्वी का संयम व्याप्त था। फिर भी वे बत्ती बुझाएं इसके पूर्व ही हिम्मत कर के अपने जूड़े के फूल उतार कर उसने धीरे से शरद के चरणों पर रख दिये।

वे एक क्षण जैसे ठिठक गए फिर उन्होंने वे मुर्झाए से फूल उठा लिये। उठा कर कहां रखे यह नहीं मालूम पर तभी बत्ती बुझ गई और निकटस्थ शय्या पर किसी के लेटने का आभास हुआ।

वह पहला सबक निर्मल ने यथा शक्ति हृदयंगम किया। अपने व्यवहार से उसने कभी भी शरद को अप्रसन्न अथवा असन्तुष्ट रहने का अवसर नहीं दिया फिर भी उसके मन में एक अथाह रिक्तता और उद्विग्नता आ गई थी।

निर्मल ने अकर्मण्य रहना नहीं सीखा था। वह बाल्यकाल से ही कर्तव्यशील थी। छात्रजीवन में भी हमेशा एक आदर्श छात्रा रही। घर में भी आदर्श कन्या बन कर रही। विवाह के समय मन ही मन वह आदर्श कुलवधू तथा आगे जाकर आदर्श माता बनने का संकल्प कर रही थी पर उसकी सभी कोमल कल्पनाएं जैसे नृशंसतापूर्वक सुला दी गई हों। वह अपने स्वामी को जी भर कर सेवा करना चाहती थी, उनके प्रत्येक इंगित पर चलना चाहती थी पर उनकी दूरी ने जैसे उसका समस्त मनोबल नष्ट कर दिया था। अब तक वह यही मानती थी कि जीवन में जो व्यक्ति जहां है, जिस रूप में है उसे अपने क्षेत्र में तन मन से अपे-

क्षित कार्य में जुट जाना चाहिये। आत्म-तुष्टि का यह सबसे बड़ा साधन है। पर वह कहां से आत्म-तोष लाए ? उसके मस्तिष्क में दिन रात यही विचार चलता रहता था कि आखिर उसके जीवन का क्या उद्देश्य है। विधाता की अखिल सृष्टि जैसे नियम-वश ही अपनी अपनी जगह गतिमान थी केवल वही ऐसी है जिसका जीवन जैसे निस्सार हो।

सोच सोच कर उसने समाज सेवा का कार्य अपनाने का निश्चय किया। वह आर्य-समाज के जलसों में प्राय: जाया करती थी। वहां एक बार अपील की गई कि हमारे भोले-भाले आदिवासियों को ईसाई मिशनरियों के चंगुल से बचाने के लिये जागरूक व शिक्षित करने की आवश्यकता है। इस पवित्र कार्य के लिये भाई-बहिनों से अपना पुनीत सहयोग देने की प्रार्थना है।

निर्मल को लगा जैसे उसे कार्यक्षेत्र मिल रहा है। और वह चुपचाप अपना नाम दे दे। मौसी की ओर से अड़चन अवश्य हो सकती है, वे कदापि अनुमति न देंगी किन्तु शरद पर इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी वह इसका अनुमान नहीं लगा पाती थी। उसे जहां एक ओर लगता था कि यह उन्हीं का तो पन्थ है, वे भला आपत्ति क्यों करेंगे, वहां दूसरी ओर मन में यह हूक भी उठती कि न जाने किस अभिशाप वश मैं स्वामी से दूर जाने की कल्पना कर रही हूं जब कि रोम रोम उनके स्पर्श के लिये, उनके नैवेद्य के लिये व्याकुल है हृदय अहर्निश उनके चरणों में लोटना चाहता है, फिर भी वह दूर जाना चाहती है और इस तरह समाज सेवा द्वारा वह वस्तुत: उनकी सेवा करना चाहती है। कैसी विडम्बना है यह !

शरद पितृहीन थे। छोटे भाई शिशिर का विवाह था। बड़ा होने के नाते इन पर ही सब कार्यभार था। अच्छे घर में भाई का संबन्ध हुआ था, शरद इससे बड़े प्रसन्न थे। निश्चित समय में शहनाइयां बजने लगीं, बारात कन्यागृह में पहुंची। परम्परानुसार कन्या को वर के गले में जयमाला डालनी थी। सभी एक तरह से उत्सुक से खड़े थे। जीवन का सर्वाधिक रोमांचक क्षण आ रहा था। सहेलियों से घिरी हुई श्रृङ्गार युक्ता कन्या सिमटी-सिमटाई सी द्वार तक आई। तभी सबने देखा कि लाल साढ़ी के अन्दर से दो हाथ वरमाला डालने के लिये तत्पर हो रहे हैं। जयमाला का आदान-प्रदान हुआ। मंगल-गान हुआ, तालियां बजीं, कैमरे हिले और साथ ही अप्रत्याशित रूप में आन्दोलित हो उठा शरद का मन। उन्हें अपने विवाह का स्मरण हो आया जब इसी तरह लाल साड़ी से निकले हुए दो हाथों ने, जो न जाने कितने स्वप्नों, आशाओं और मनुहारों के

भार से बोझिल थे, धीरे धीरे उठ कर उन्हें भी कभी जयमाला पहनाई थी। उन्हें बार बार लाल साड़ी में लिपटी हुई अपनी नारी की प्रतिमा उसकी झुकी हुई पलकें और उठे हुए हाथ ध्यान में आने लगे। ध्यान भी ऐसा तीव्र कि उसने अन्दर ही अन्दर सिर से पैर तक जैसे झिझोड़ कर निस्सत्व सा कर के रख दिया। वे पसीना पसीना हो गए और घबरा कर अपने एक घनिष्ठ मित्र को कुछ समझा कर उठ आए। मित्र ने समझा होगा कि शरद को गणित का कोई नया फार्मूला ध्यान में आया होगा नहीं तो इस समय उठने का और क्या कारण हो सकता है।

निर्मल बारात में नहीं गई थी। घर की व्यवस्था की दृष्टि से उसका वहां रहना अनिवार्य बन गया था। नववधू की डोली रात में ही आने वाली थी। निर्मल ऊपर के एकान्त कक्ष में उसके लिये पुष्प शय्या तैयार कर रही थी। दीप-स्तंभ पर छोटा सा टेबुल लैम्प सुशोभित था। फूलों की मधुर गन्ध वातावरण को मादक बना रही थी। निर्मल कार्य में व्यस्त थी और सोचती भी जा रही थी कि उसका जीवन-प्रदीप भी कैसा बुझा-बुझा सा जल रहा है। तभी उसने शरद का अनपेक्षित घोर गम्भीर स्वर सुना—निर्मल !

मांगलिक लाल साड़ी में लिपटी हुई निर्मल के दोनों हाथ साहस कर आंचल में छिप गए। उसके स्वामी यहां? इस समय? उपेक्षिता के हृदय में जैसे अजस्त्र रस निर्झर प्रवाहित होने लगे। वह ठिठकी संभल न सकी उसने अधमुन्दी आंखों से दीवाल की ओर देखा सहारा पाने के लिये पर तभी शरद उसके निकट आ खड़े हुए। चेतनाहारा सी वह स्वामी के चरण छूने के लिये झुकी ही थी कि थाम ली गई।

वह अश्रु और तपश्चर्या का मिलन था। करुणा और पौरुष का मिलन था।

उसी वर्ष शरद को एक नए वैसे सनातन गणित का अनुभव हुआ कि एक और एक तीन हुआ करते हैं।

———

मुक्ति-बोध

—राम जी मिश्र

"मैं मानता हूँ, तुम वहां सुख से हो।"

उसके पिता एकाएक चुप हो गये और उसकी ओर देखने लगे। उन्होंने जानबूझ कर वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया था और उसके चेहरे को गहरी नज़रों से देखने लगे थे। वह नीचे घास की ओर देखे जा रहा था।

पहले जब वह छुट्टियों में घर आता था तो पिता वहां के बारे में पूछते थे और संतुष्ट होते थे कि उसका लड़का मज़े में है। उन्होंने दो-एक बार कहा भी था कि मैं कभी दिल्ली आकर तुम लोगों के पास कुछ दिन रहना चाहता हूं। वह जानता था कि उसके पिता दिल्ली में उसका रहन-सहन पसंद नहीं आयेगा। शायद वे खिन्न ही हों फिर भी वह उन्हें आने का निमंत्रण देता रहा था। वह और उसके पिता आपस में खुल कर बातें करते थे और दिल्ली की क्यू वाली जिंदगी के बारे मेंभी सुन कर परेशान नहीं होते थे बल्कि कहते थे, "यही सब तो जिन्दगी है। उसके हर रूप को, हर पहलू को देखना चाहिए। अभी तुममें साहस है, शक्ति है। ये सब छोटी-छोटी बातें हैं। इनसे घबराना नहीं चाहिए। वहां जब तक तुम्हें अच्छा लगे रहो, जब मन हो यहां चले आओ।" वही पिता अब बिलकुल दूसरे ढंग से सोचने लगे थे। पिता और पुत्र की बातों में अब वह खुलापन नहीं रह गया था। दोनों को लगता था, बात करने की एक चतुरता होती है। कोई बात ऐसी न कहो कि पकड़ में आ जाओ। अपने को सुरक्षित रखते हुए बात करो।

वह सोच रहा था कि पिता की इस बात का वह क्या जवाब दे? जवाब

दे भी या चुप रह जाय। अगर वह चुप रह गया तो पिता समझेंगे कि उसने अपने लिए वहां बहुत सारी सुविधाएं सुरक्षित कर रखी हैं और अपने छोटे से परिवार के साथ सुख से है और अगर वह कहे कि वहां परेशानियां हैं तो पिता के पक्ष में बात चली जायेगी। उसने बिलकुल दूसरे ढंग से जवाब दिया, "सुख यही है कि मैं वहां संतुष्ट हूं।" "तुम अपने आप को धोखा दे रहे हो। मैं जानता हूं, तुम्हारे संस्कार ऐसे हैं कि तुम वहां सुखी या संतुष्ट नहीं रह सकते।" उसे ख्याल आया पिछले साल भी पिता ने यही बात कही थी लेकिन तब संदर्भ दूसरा था। कई लोग बैठे थे और वह दिल्ली के व्यस्त जीवन को प्रशंसा करता हुआ कह रहा था, "यहां के लोग काम चोर हैं। मेहनत करना नहीं जानते। जो मेहनत नहीं करता है वह जिन्दगी का मज़ा भी नहीं लूट सकता, दिल्ली में सुबह से शाम तक लोग मेहनत करने के बाद घर वापस आते हैं तो उनमें अपने बच्चों के प्रति एक तीखी ललक होती है। रात में बच्चों से बातें करते, हंसते-खेलते, सुख का अनुभव करते हैं। वे ज़्यादा से ज़्यादा पैसा कमाते हैं और खुल कर खर्च करते है। यहां न तो कोई कमाना जानता है न खर्च करना ही।"

इसी बात पर उसके पिता ने कहा था कि, "वहां के लोगों को पैसा ही सब कुछ लगता है लेकिन पैसे के आगे, बहुत आगे और भी चीज़ें हैं। अभी तुम पैसे की चाहे जितनी बड़ाई कर लो लेकिन मैं जानता हूं तुम्हारे संस्कार ऐसे हैं कि तुम वहां सुखी या संतुष्ट नहीं रह सकते।" तब उसने कह था, "पिता जी का कहना ठीक है, मुझे उन लोगों का पैसे के पीछे इस तरह भागना अच्छा नहीं लगता। किसी भी चीज की हद होती है। पैसे की चर्खी में खुद, बीबी और बच्चों का इतनी तेजी से घूमते रहना भी अच्छा नहीं कि कभी एक-दूसरे से मिल ही न पायें। थक कर इतना चूर होना भी क्या, कि घर लौट कर बच्चों से हंसने-बोलने की भी हिम्मत न रह जाय। मुझे इस तरह की दौड़-धूप पसंद नहीं।"

जब वह बोल रहा था तब उसके पिता कभी उसके चेहरे को देख कर सिर हिलाते थे, कभी अपने दोस्तों को देखकर जैसे उनसे कह रहे हों—देखा मेरे बेटे को?

वही पिता आज बड़े असमंजस में पड़े हुए थे। उनके चेहरे से लग रहा था कि वे खीझे हुए हैं। वे उठ कर लान में टहलने लगे थे। पहले तेज़-तेज़ कदमों से फिर धीरे-धीरे उनकी गति रुकती गयी थी जैसे उनके विचार कुछ

सुलझ रहे हों लेकिन उसने पिता की ओर देखा तो चेहरे का रंग गाढ़ा हो आया था। वे कह रहे थे, "मैं फिर कह रहा हूं, तुम अपने को धोखा दे रहे हो। तुम न तो सुखी हो, न संतुष्ट ही। यहां रह कर उससे ज़्यादा संतुष्ट और सुखी रह सकते हो। शायद तुम समझते होगे कि तुम्हारे सुख को यहां हम लोग बांट लेंगे लेकिन सोचो ज़रा, तुम्हारा सोचना कितना गलत होगा।"

"मैं अपनी जिम्मेदारी अच्छी तरह समझता हूँ।"

"क्या तुम समझते हो? अगर तुम्हारी यही समझ है तो लानत है तुम पर। मैं नहीं समझता था कि इतने ही दिनों में तुम अपने सारे संस्कार धो-पोंछ कर साफ कर दोगे। यह तुम्हारी ज़िद है। न समझने की ज़िद। मैं नहीं चाहता कि तुम्हें समझाने के लिए मैं फिर से वे ही बातें कहूं जिसे नब्बे प्रतिशत पिता अपने बेटों के लिए कहते हैं। अगर मुझे भी वे बातें कहनी पड़ीं तो तुम्हारे इतना पढ़ने-लिखने से क्या फायदा?" वे गुस्सा हो गये थे और फिर से लान में घूमना तेज़ कर दिया था। वह कुर्सी पर बैठा बठा ऊब रहा था। कहीं मन में पछता भी रहा था कि वह क्यों यहां आया जानबूझ कर जाल में फंसने के लिये। वह बेहद थका हुआ सा जाते हुए पिता की पीठ देख रहा था। उनकी पीठ कुछ-कुछ कूबड़ की शक्ल में बाहर निकल आयी थो और गर्दन आगे की ओर झुक गयी थी। पिता सामने जाकर ठिठके। उनको नजर मीर साहब के इमामबाड़े की दीवार पर थी। दीवार की मोटी पलस्तर उखड़ गयी थी। काई की वजह से यह बता सकना नामुमकिन था कि कितने साल पहले इस पर सफेदी हुई थी। वह कुर्सी पर थोड़ा पसर गया था। उसकी नज़रों के सामने पिता की बाहर को निकली हुई पीठ, कमर पर टिकी हुई हथेलियां और सामने मीर साहब के इमाम-बाड़े की काई जमी दीवार थी। फिर उसके मन में क्षोभ हुआ, वह नाहक इस बार घर आया। अब आगे से उसे घर नहीं आना चाहिए। वह घर नहीं देख सकता। उसका मन इसमें लगेगा भी नहीं। वह वहां का ही हो कर रह सकता है। वहां बहुत कुछ उसका हो चुका है, यहां जो उसका था कभी, अब पराया सा लगता है। पहचान भी जगह बदलती है शायद। यहां की पहचान धुन्धलाती जा रही है और वहां की ताज़ा और जानदार। उसने यही सब सोच कर जमीन खरीद ली है। नौकरी से रिटायर्ड होकर वह मकान बनवाये गा फिर वहीं रहेगा। यहां की चीज़ें वह बेच देगा। एकाएक उसके चेहरे पर प्रसन्नता आ गयी जैसे उसके सामने मेज़ पर नोटों से भरा एक सूटकेस खुला हो और वह ताज़े-ताज़े हरे हरे नोटों को अपनी नज़रों से सहला रहा हो।

पिता उसके पास लौट आये थे और सामने की कुर्सी पर बैठते हुए कहने लगे थे। वह अपने विचारों में अब भी खोया हुआ था। उसकी आंखें पिता के चेहरे पर थीं लेकिन वह उन्हें जैसे देख नहीं रहा था। वह इधर कई दिनों से पिता को देख रहा था और घर लौट आने की उनकी ज़िद सुनता रहा था लेकिन आज ही वह उनके चेहरे को गौर से देख सका था। इस वक्त का पिता का चेहरा जैसे उनकी देह पर नहीं बल्कि हरे नोटों पर उग आया हो। उनकी घनी बरौनियों में छोटी छोटी आंखें और भी छोटी लग रही थीं। माथे पर अवसाद से भरी झुर्रियां जैसे और भी स्याह हो गयी थीं। पिता के होंट हिल रहे थे। उनके बनावटी दांत ढीले हो गये थे और बार बार नीचे को झूल आते थे जिससे वे अपना मुंह बीच-बीच में बन्द कर लेते थे और बड़े एहतियात के साथ बोल रहे थे।

" लेकिन अब वक्त आ गया है।" पिता ने कहा तो उसे लगा, यही बात तब से लेकर अब तक पिता दोहरा रहे हैं। 'मैं ज़्यादा इन्तज़ार नहीं कर सकता। यही वक्त है कि तुम लौट आओ। मैं अपनी बातों में तुम्हारी मां को नहीं लाना चाहता था क्यों कि मैं समझता था, तुम हमारी बात मानोगे। कभी नहीं सोचा कि तुम्हारे लिए मेरी बातों की कोई वुकत न रह जायेगी और फिर मां की दुहाई देनी पड़ेगी। बड़े अफसोस की बात है, बेटा!"

लगा जैसे पिता के गले में कोई चीज़ आकर अटक गई है। "तुम खुद समझ सकते थे और कह सकते थे कि 'अब मैं दिल्ली नहीं रहना चाहता। मैं वहां रहूँगा तो आप को और मां को तकलीफ होगी। अब मेरी यहां ज़्यादा ज़रूरत है।' लेकिन तुम न कह सके।"

इतना कहते-कहते पिता का चेहरा तमाम झुर्रियों से भर गया था। उनकी ठुड्डी कांपने लगी थी और घनी बरौनियों में आंखें अन्दर धंस कर गायब सी हो गई थीं सिर्फ वहां चमक रही थीं कुछ बून्दें। पिता एक झटके से उठे और दूसरी ओर देखते हुए बरामदा पार कर अपने कमरे में चले गये।

इसके बाद पिता ने कुछ नहीं कहा। मां हमेशा से कम बोलती थी। बोलती भी थीं तो बड़े संकोच के साथ शब्दों को तौल-तौल कर, कहीं कोई शब्द नुकीला न रह जय। फिर इन दिनों बच्चों को पाकर और भी बेसुध हो गई थीं। हमेशा बच्चों के लिए परेशान। कभी किसी को तेल लगा रही हैं तो किसी को उबटन। बच्चों को पालने का उनका अपना ढंग था। वे समझती थीं कि उनका तरीका

ही शाश्वत है। उसकी बीबी ने पहले शिकायत की थी, 'देखते हो, बच्चों को कैसा मसलती है।' लेकिन उसने मना कर दिया था, "मां से कुछ न कहना, जैसा चाहती हैं, उन्हें करने दो।" बच्चे अपनी दादी मां की भाषा ठीक से नहीं समझ पाते थे फिर भी वे कहानियां सुनातीं तो बच्चे चुप चाप उनका मुंह निहारते रहते थे। शायद बच्चों को दादी मां की कहानियां समझने में भाषा की बाधा महसूस नहीं होती थी। बीच-बीच में वे दोहे या गीत की कड़ियां भी दोहराती जातीं बस थोड़े से फेर-बदल के अलावा पूरी-की-पूरी कड़ी वही होती थी।

वह गाड़ी में बैठा था। ऐक्सप्रैस पूरी रफ्तार से बढ़ती जा रही थी। लोग अपनी-अपनी बर्थ पर सो चुके थे। डिब्बे में नीली रोशनी पिघल रही थी। वह जाग रहा था। देख रहा था, उसकी बीबी निश्चिंत सोयी पड़ी है। बराबर वाली बर्थ पर दोनों बच्चे बेसुध थे। उस रोशनी में, भागती गाड़ी के डिब्बे की खामोशी में उसे लगा, कहीं बाहर पिता की आवाज कुचली जा रही है। कहीं मां हांफ रही है। कहीं इमामवाड़े की दीवारें बहुत पीछे छूटी जा रही है। दूसरे क्षण उसे लगा, नहीं वे सब पीछे नहीं छूटी हैं। वे उसके अन्दर समा गयी हैं और वह कह रहे हों, "तुम अपने को धोखा दे रहे हो, तुम न तो सुखी हो न संतुष्ट ही।...कभी नहीं सोचा कि तुम्हारे लिए मेरी बातों की कोई वुकत न रह जायेगी और फिर मां की दुहाई देनी पड़ेगी।"

उसे लगा, वह हांफ रहा है, उसकी आवाज़ कुचली जा रही है और उसका लड़का मुसकरा रहा है।



परदेसी

—राज भल्ला

बस यह तीन दिन की उसकी पहली और अन्तिम मुलाकात थी। आज चौदह दिसम्बर की एक घनी काली रात उसे अपने बालों में उंगलियां फेरते महसूस हो रही थी और वह अपने तमाम शरीर में एक सुन्नता सी अनुभव कर रहा था। उसका ख्याल था यह रात कभी दिन न बनेगी और यदि बने भी तो यह दिन इस रात से शायद ही कम भयानक और काला हो। वस्तुतः जड़ता और चेतनता के अद्भुत मेल में से गुजर रहे उस अद्भुत इन्सान की दुनिया बसी थी—एक तरफ बर्फीली चोटी पर तो दूसरी तरफ अम्बी के गुमसुम गांव से।

हां तो आज पन्द्रह दिसम्बर की दूसरी रात थी उसकी एक अनजान किसी के गांव में। गुलाब की खुश्बु लेने से पहले कांटों की पीड़ा झेलने के आदी उसने अपनी तमाम ज़िन्दगी को अब की बार एक पड़ाव पर रखना चाहा। बस फिर क्या था—एक ऊंचे टीले पर चढ़, जांघों और बाहों के बीच सिर को छुपाते हुए कहने लगा—ओ ! फुर्र से सफेद कबूतर उड़ा, लो पहुंच गया झट से। ओ ! तेज हवा का झोंका आया। लो फैल गया सारे आकाश में। अच्छा तो क्या—मैं भी तो आ गया हूँ। तीन दिन की छुट्टी है। पर कोई ठिकाना नहीं। खैर परेशान नहीं हूं। हो सकता है यह बे ठिकाना ही मेरी पहली और अन्तिम मुलाकात का ठिकाना हो। हां इतने उखड़े क्षणों में उसे इस बात की बेहद खुशी थी कि वह एक गांव में है और वह गांव अम्बी का है।

हां तो वह गुज़र रहा था सामने लहलहाते धान के खेतों में से। ठीक ऐसे में उसे उन जंगली फूलों की याद आई जो अपने आप उगे और मुरझा भी गए। सोचने लगा—मुरझाने से पहले उन्हों ने अपने को नीलामी पर चढ़ा दिया।

था मेरी ही तरह और आज वे भी ढूंढ रहे होंगे अपने खरीदार को। यह खरीद और बेच कितनी पवित्रता का दाम चुका चुकी थी। इस बात के साक्षी थे उसके मार्ग के न हिलने वाले पत्थर, न रुकने वाली पहाड़ के दामन में बहती नदी और बर्फीली चोटियों पर पड़ती सूर्य्य की अन्तिम किरणें।

अच्छा तो आज छुट्टी का दिन था और थी अम्बी के गांव में उसकी यह तीसरी रात। किसी एक पड़ाव पर पड़े-पड़े शायद किसी के पत्र ने उसे अगले पड़ाव गिनने पर मज़बूर किया था। बहुत बरसों बाद वह आज टिमटिमाते दीपक की लौ वाले उस घर में जा रहा था जहां की प्रत्येक वस्तु उसे रुला देती। दरवाजे में लगा हरे रंग का पर्दा बजाय किसी की तबियत की रंगीनी को ज़ाहिर करे, वह तो हिलडुल कर एक लम्बी दुःख भरी कहानी की ओर संकेत कर रहा था। कहीं यह रात ज्यूं ही न बीत जाए इस डर से झेंपते हुए मौन-आंसुओं ने उन दोनों की सहायता की। वह भी चाहती थी कि बर्फीले पहाड़ के पीछे खन्दकों में इतने सुन्दर यौवन को गला देने वाले से कुछ पूछे परन्तु क्या करे—होंठ खुलते नहीं थे और फिर जब खुले तो तब तलक बन्द होने का नाम न लिया जब तक उसने अपने हाथ झेंपते २ उसके होंठों तक न पहुँचा दिए।

गुमसुम इन तीन रातों में से यह आखिरी रात उसकी बीत रही थी उसके साथ जो गांव वालों की नज़र में उसकी भाभी और उसकी अपनी निगाह में थी उसके दोस्त की पत्नी। हां तो उसे पत्र मिला था विवाह के चौदह वर्ष बाद तब, जब वह तो था परन्तु जिस कारण उसकी और गांव वालों की निगाह में अन्तर था—वह इस दुनिया में नहीं था। शायद उसी की मुट्ठी-भर राख को सदा गर्म रखने के लिए वह इतनी दूर से पहाड़ों को चीरता, हिंसक जानवरों से भिड़ता, अनेक नदी नाले पार करता आ रहा था।

हां तो पन्द्रह दिसम्बर की यह शाम अपने में अनेक सपने लिए अगले किसी नए दिन में घुलने का उपक्रम रचने लगी। मैं हैरान था उन विचित्र दो जिन्द-गियों की कहानी को देख कर कि ये दोनों कितनी खामोशी से एक दूसरे को पढ़ रही हैं, परन्तु यह खामोशी सब्ज़ घास पर पड़ी बर्फ की हल्की फुल्की फूइयों की तरह अत्यन्त नाजुक और पवित्र है। ऐसा अनुमानने में मुझे कुछ भी तो देर न लगी।

उधर बिलकुल चुपचाप हल्की हवा के झोंके से अम्बी का जीवन दीपक बुझ गया था और वह अब ऐसे ही मिट्टी के दीप से जीवन भर जल २ कर जीना

सीख रही है जो बिन बाती और तेल ही जलना चाह रहा हो, ऐसा उसने उस घर में पहुंचते ही महसूस किया। बस यह उसकी आखिरी रात थी, उसके बाद न वे दिन आए और न ही कोई रात—और अब धीरे २ सूर्य की किरणों ने उसे ज़िन्दगी के दूसरे छोर की सुध लेने को झंझोड़ा।

बस याद आते ही उसके तमाम शरीर में सिहरन सी पैदा हो गई, क्योंकि उसे जाना था वहां जहां से शायद ही लौट सके और इधर सामने बैठी अम्बी को इतने ज़ोर का दर्द हुआ कि अनेक पर्वतों, जंगलों और दरयाओं को चीरता हुआ वह दर्द जब तक कि वह वहां पहुँचे उससे पहले ही दर्रे को पार कर गया। फिर भी जाते २ उसने कुछ सकुचा कर अम्बी से पूछा—क्या डा. को बुलाऊं? उत्तर था नहीं, तुम जो आ गए। बस इतना कह वह तकिए के नीचे मुंह कर के सुब्कियां लेने लगी। आज ये सुब्कियां उस अम्बी की थीं जो विवाह के बहुत बरसों बाद मां बनेगी। ये सुब्कियां उसके लिए भी थीं जिसने इस नए मेहमान को खातिर आकाश, पाताल बातों में एक किया था परन्तु कुछ भी न पाकर एक दिन मुट्ठी-भर राख अम्बी को देकर वह सदा, सदा के लिए इस दुनिया से चल पड़ा था। इन सुब्कियों की गम्भीरता का अनुमान इसी से लग सकता है कि अम्बी को एक मर कर नहीं मिला तो दूसरा जीकर।

हां तो परदेसी ने यह सब देखा अपनी आंखों। पर उसे तो अब सामने खड़ा दीख रहा था बर्फीला पहाड़ जो आज भी उसकी इन्तज़ार में खड़ा है। खैर आंसुओं और आहों से बने ये सर्द गर्म तीन दिन बीत गए। परदेसी ने गांव वालों को अन्तिम प्रणाम कह कर अम्बी को थोड़े में जो कहा वह शायद यह था—"अच्छा जाता हूँ। जब आवश्यकता समझो याद करना, कोशिश होगी कि आऊं।"

एक, दो, तीन दिन और गुजरे। आज अम्बी की तबीयत में सख्त परेशानी है। सम्भवत: आज ही । उधर वह चला तो गया पर जाती बार अपनी करीबी बुआ को पत्र लिखता गया ताकि वक्त पर अम्बी को सहायता मिल सके। बुआ ने वर्षों बाद पत्र पाया तो जल भुन कर राख हो गई। उसे सामने पड़तीं बर्फीली चोटियां भी शान्ति न दे सकीं और बुड़बुड़ाते बोली—हरामी! सारी कमाई से तो दूसरों की जेबें भरता रहा और अब याद आई बुआ की।

परदेसी बुआ की संख्यालु तबियत से परिचित था। कदाचित् उसे कुछ न लिखता, पर मरता क्या नहीं करता। चीतों, शेरों से घने बसे जंगल को पार

करता वह सोच रहा था—इन इन्सानी चीतों को पहचानना कितना मुश्किल है। हां तो जो भी था अम्बी आज जीवन और मृत्यु की मंजिलें तय करती हुई हस्पताल वालों की दया पर सांसें ले रही थी।

खैर दिन बदला, वक्त बदला, कलि फूटी, फूल खिला और उसकी सुगन्धी फैल गई इधर-उधर सब जगह। इतने में अम्बी ने सहसा देखा कि पक्षियों की एक टोली परदेसी की पहाड़ियों को छूती हुई एक दम से पार हो गई है। पर्याप्त समय उसने उसके मुड़ने की इन्तज़ार की परन्तु वह टोली तो आज भी नहीं मुड़ी। सम्भवतः उन्हें अपना समझ कर मुड़ने ही नहीं दिया होगा। जो भी था, अम्बी को तो अब अपनी दुनियां में एक नन्हे की खातिर आंसु नहीं, मुस्कराहट बखेरनी थी। ऐसे में उसे याद आया तीन रात्रियों वाला परदेसी। हो नहीं सकता कि वह, इस अवसर पर न आए। हां तो उसने जो लिखा वह यूं था—"कोई अपने चाचा को बुला रहा है।"

दर्रे पार के परदेसी का यह पत्र या तार न मिले हों ऐसी तो बात न थी। पक्षियों की यह टोली, नए फूल की खुश्बु और निमन्त्रण का यह तार—सब मिले पर मिले उस वक्त जब उसकी तीन रातें चार न बन सकती थीं। वह तो उस समय कम्पनी कमाण्डर की हैसियत से जा रहा था कहीं और ही। प्यार और ममता भरे उन शब्दों ने उसे अपनी ओर उतनी ही ज़ोर से खेंचा जितना उसके वर्तमान कर्तव्य ने, परन्तु क्या करे—सैनिक जीवन बड़ा विचित्र होता है। उसने तार पढ़ा और उतने अधिक टुकड़े करके ज़मीन पर फैंक दिए जितने अधिक टुकड़े उसके दिल के हुए थे अपनी बे-बसी को देखते हुए।

बस इसी तरह दस दिन बीत गए। मुट्ठी भर राख की गर्मी से परदेसी को बर्फीली चोटियां पिघलने लगीं। इधर अम्बी को अब किसी पत्र की नहीं बल्कि किसी के आने की इन्तज़ार थी। शायद यह इन्तज़ार परदेसी की थी जिस ने मुश्किल में सहारा बन कर उसे जीने योग्य बनाया था। मैं कभी 2 सोचता हूँ अम्बी का सहारा देखो– जिस ने दिन को घर देखा न रात को परन्तु है यह इसी के सहारे। तो क्या उसने सहारा ढूंढते वक्त गलती की ? नहीं तो—सहारा ढूंढते या बनते वक्त यह सब नहीं देखा जाता।

हां तो आज खिड़की के पास खड़ी अम्बी को दरवाज़ा खटकने की आवाज़ सुनाई दी। पर कहां—वह तो आज रात घमासान लड़ाई में घायल हो चुका था। एक गोली उसके माथे और दूसरी टांग के आर पार हो चुकी थी।

धीरे 2 परदेसी के घाव ठण्डे पड़ने लगे और दर्द गर्म होने लगा। इतनी भारी पीड़ा को सहना सहल हो जाता यदि वह अम्बो को कुछ कह पाता तो। कुछ तो ज़ख्मी होने की वजह से और उससे भी अधिक क्या लिखूं, यह समझ न आ सकने से उसे उत्तर में देरी हो गई। अन्तत: उसने जो लिखा वह यूं था—"मेरी इन्तज़ार होगी। मैं आऊंगा, पर कब—यह कुछ भी नहीं कह सकता।"

अम्बी को पत्र की एक ही पंक्ति के दो शब्द मृत्यु और जीवन की झांकी दिखा रहे थे। बादलों में चन्द्रमा की आंखमिचौली के समान कभी इस प्रतीक्षा का अन्त हो रहा था तो कभी और भी उभर आती। हां तो आज 27 सितम्बर की चौथी रात को वह दरवाज़ा खटका जिस दरवाज़े से एक परदेसी तीन दिन के लिए, हां-हां सिर्फ रातों के लिए सहारा बन कर आया था।

हां तो अम्बी दरवाजे के पास पहुँची। डाकिए ने तार का हाथ बढ़ाते हुए अम्बी को जो पढ़ने पर मज़बूर किया वह था—"सतीश की मुट्ठी भर राख को गर्म रखने वाले परदेसी की मौत।" बस एक बिजली सी कौंध कर कलेजे को चीर गई। अन्धकार का अम्बार उसकी आंखों के सामने लगने लगा। तमाम गांव उसकी छट-पटाहट में डूब सा गया। बस दिन निकलते ही निकलते तमाम गांव में यह खबर बड़े दु:ख से सुनी गई कि अम्बी की नाव को किनारे पर लगाने वाला परदेसी चल बसा है। सब के चेहरे गुमसुम से जो कह रहे थे वह यह था कि जब किश्ती किनारे लग कर डूब जाए तो फिर क्या ?

———

पहचान

—विष्णु सक्सेना

साहब, साहब, दरवाजा खोलिए।

क्या बात है चौकीदार ?

साहब इस ब्लाक में कोई आदमी घुसा है।

यहां तो कोई नहीं, सामने वालों से पूछते हैं। अरे शर्मा जी, दरवाजा खोलिए।

क्यों भई, क्या बात है ?

आपके यहां कोई आया तो नहीं ?

नहीं तो।

अच्छा, तो ऊपर के दोनों क्वार्टरों में और पूछते हैं।

अरे अनेजा साहब, अरोड़ा साहब, दरवाजा खोलिए।

रात के ग्यारह बजे हैं। आप लोगों को नींद नहीं आ रही क्या, जो शोर मचा रहे हैं ?

कोई इस ब्लाक में घुसा है, चौकीदार कहता है।

नहीं हम लोगों के यहां तो कोई नहीं आया, क्यों मिसेस अनेजा ?

नहीं यहां तो कोई नहीं आया और इनकी नाइट शिफ्ट है।

हम चारों में से किसी के यहां नहीं, तो फिर वह आदमी गया कहां ?

साहब वह जरूर छत पर होगा (लम्बा चाक़ू निकाल कर) मैं जाकर देखता हूं।

वह रहा साहब (चाक़ू उसकी पीठ पर रखकर) चलो बेटा नीचे।

(तीनों उस पकड़े हुए आदमी को देखकर) चौकीदार इन्हें छोड़ दो और देखो यह अगर कभी इधर आएं, तो इन्हें रोका मत करो।

क्यों साहब ?

अक्सर रात को इनके पेट में दर्द उठता है और यह दवा लेने आते हैं।

अच्छा साहब।

(लगभग एक घंटे के पश्चात्, उसी मकान के पास एक पेड़ के नीचे एक छाया देखकर, चौकीदार टार्च से रोशनी फेंकता है, तो वही आदमी दिखता है।)

तुम पहचानते नहीं कौन खड़ा है ? यूं ही टार्च दिखाते रहते हो।

हां साहब, अब तो पहचानता हूं। आपके पेट में फिर दर्द उठा होगा इसी लिए आप इधर आए हैं।

———

आत्मनिर्भरता की गंध

—गिरिजा 'सुधा'

लगे हैं तन्मयता से
कोटि कोटि तरुण-तरुणियों के हाथ
धरती की छाती पर
बोते हैं,
बिराते हैं,
और मन ही मन
आत्म निर्भरता की आस भी लगाते हैं।
उठा-उठा देखते हैं,
पकी-अधपकी बालियां,
गौरव से हुँकार भर,
देते हैं ढपली पर थाप एक बार वे।
मद मस्त हो गाते हैं,
जीवन के गीत वे।
नाक भौं सिकोड़,
कुछ लोग देखते हैं इन्हें,
नई सभ्यता के हिमायती बन,
पर लावारिस जीव नहीं हैं ये।
स्पन्दित हैं इनमें,
योजनाओं की रूह,
युग के उलास-क्षण
और आत्मनिर्भरता की गंध !
कैद करें इनका,
एक एक स्पन्दन हम,
एक एक इंगित पर इनके,
श्रम-निष्ठा का वरण करें,
धन धान्य से अंक भरें।
आत्मनिर्भरता का सचमुच फिर वरण करें।
पाखण्डी मौसम के 'कंस' का,
एक बार फिर से हम 'कान्हा' बन,
उत्कट मद चूर करें।
तिमिर हरें !!
ज्योति भरें !!!

———

इच्छामती के किनारे

—रघुबीर चौधरी
अनु.—डा. अरविन्द जोशी

इच्छामती के किनारे—
सूर्य उदित ही नहीं हुआ आज
कवि-रवि !
यहां 'क्षुधित-पाषाण' के—
सर्जन-स्थल पर बैठे-बैठे
देखता ही रहा मुझे तो
अंधेरे में आवृत्त—
'आमार सोनार देश ।'

कुछेक वर्ष पहले
ननिहाल में आए थे तब
रख गये थे मधु
सिलहट का घाटियों का
शेख मुजिबुर रहेमान,
कब चुका सकूंगा मैं
प्रीति का यह अहसान ?
उनकी वाणी में देखा है मैंने
अभय का वरदान,
यही तुम्हारी कविता के—
सौंदर्य का सम्मान !
पद्मा के गंभीर प्रवाह पर—
मंद-मंद तरंगित चांदनी में
पाल बांधे उड़ती तुम्हारी
नैया का नर्तन,
आज अंधेरे में आ जाता है—
याद,
उसी समय एकाएक—
सुनाई देता है
नवजात शिशु को खो बैठने वाली
माता का क्रन्दन !

इस आदमी को भी कैसा—
लगा है
रह-रह कर पागल होने का
कैसा लगा है अभिशाप ?
अन्यथा स्वयं की ही सृष्टि में—
मृत्यु की अतिवृष्टि चाहे भला ?
तब भी कहता हूँ मैं—
दबेगा नहीं मनुष्य का—
सर्जन मन ।
चित्तगोंग की गिरिमाला में
फूटते बांस के अंकुर—

कभी भी उसकी तलहटियों को
नहीं होने देंगे निर्जन !

आज तो मैं पद्‌मा अथवा
मेघना को कह नहीं सकता,
हे नदियो बहो धीरे,
भले टूट पड़ें सभी—
शस्त्र-वाहक सेतु और
सैनिकों के पद-चिह्न धुल जांय,
भले अगणित दाग
निर्दोष खून के—
अभी मिट जांय।
मुक्ति वी·ों द्वारा बोई गई
उनकी काया—
कभी तो उत्पन्न होगी ही
इस उर्वर-भूमि में !
और तब—
उतर कर स्मृति में से
एक रक्त-तिलक
उभर आएगा
प्राची के भाल पर।
कवि-रवि, उसके प्रकाश में
गाऊंगा मैं गीत तुम्हारा--
"मरिते चाईना आमि सुन्दर भुवने।"

——

सुख बरसे

—शिवनारायण उपाध्याय

सुख बरसे
हम अनभीगे ही तरसे
माह दिवस गये बीत,
जान न पाये रीत
सीखन के दिन
आये अलि री
हम सूखे मन सरसे
सुख बरसे।
तोरे घर की गैल सांकरी
पावन में चुभ रही कांकरी
अखियन में आंसू की लरियां,
अब चिन्ही हम रीत,
उड़ते हैं बे परसे
सुख बरसे।
झरते बूंद
खुले हैं सीपी,
हरद सुक्ता, मुक्ता न बनाये,
जो बन जाये सो ही सरसे
सुख बरसे।
हम अनभीगे हो तरसे।

———

गीत

—उमाकान्त मालवीय

सोने का भिनसार सलोना चांदी की रातें,
आया शरद बिसरती रिमझिम कजरारी घातें।

चंदा जैसे नटखट बालक खेले आंगन में,
और चांदनी मह मह महकी माटी के कण में,
झबरे झबरे उजले बादल डोलें अम्बर में,
इन पर सर धर सोया कोई नीलम के घर में।

नभ गंगा तट पर दो तारों की गुपचुप बातें,
सुधि हो आई क्या सौदागर बिसरी सौगातें।

खाली खाली भूरी बदली लौट रही बैरिन,
पनघट से ज्यों रीता घट ले लौटे पनिहारिन,
उड़न खटोले पर समीर के उतर रही शवनम,
प्यार पिघल कर बरस रहा है भीग रहे तुम हम।

सांझ रुपहले बगुलों की ले आती बारातें,
और उभरती जल से रजत मछलियों की पातें।

लेपन कर धरती नभ तन पर चांदी का उबटन,
दूर देश है चली कहीं पर तारों की पलटन,
हर सिंगार की गंध सांस में भर भर जाती है,
मधुपन से नव रास नृत्य की पगध्वनि आती है।

खो जाते हैं किस प्रदेश में ये दिन फिर आते,
और उभरतीं जल से रजत मछलियों की पातें।

दो कविताएं

—ईश्वर नाथ अग्रवाल

1, रश्मिजाल बुन लो
करलो शृङ्गार
फूले फिर बगिया में
पीले कचनार
रश्मिजाल बुन लो।

तुम से सुवासित है
मन का अंधेरा
महके कहीं फूल
और है सबेरा
रश्मिजाल बुन लो।

2. राजहंस मानसतट सूना
सूने गिरि देवदारु
कलकल निर्झर सुचारु
पिघला सब सोना
राजहंस मानसतट सूना।

धरती अंबर विशाल
माया का इन्द्रजाल
रिमझिम झरता गुलाल
मुकुलित सब कोना
राजहंस मानसतट सूना।

हिमगिरि के चरण तले
मंदिर के दीप जले
विधवा के आंगन का
बिरवा है सूना
राजहंस मानसतट सूना।

—"—

पिछला साल

—केदारनाथ कोमल

पिछला साल भी बीत गया
बंद मुट्ठी से समय-रेत
धीरे धीरे
रीत गया !

आओ मुट्ठी कसकर
बंद करें
अभावों से जंग करें
नये साल के नयनों में
नये रंग भरें।

———

१९७२ की वसन्त

— शंकर शर्मा पिपासु

दो हज़ार साल बाद आ गई वसन्त आज,
जीत भरी प्रीत भरी वीरता ब्यार भरी।
भारत की बगिया में महक उठे फूल नये,
सौरभ संसार लिये यशलता हुई हरी।
मिटा शीत युद्ध हुआ त्रास दूर दानव का,
बंगला हित डूबी नयाज़ी की गाज़ी तरी।
पश्चिम में पाक की पलीद हुई मिट्टी है,
याहिया और भुट्टो की कौन बात रही खरी।
सेबर पै नैट टैंक पैटन पै विजयन्त,
खैबर पै विक्रान्त हुआ आज भारी है।
शत्रु की सभी चाल माणिक औ पी सी लाल,
नन्दा ने थल नभ जल में बिगाड़ी है।
हारा है हर बार हार न स्वीकार करे,
शत्रु भी देखो यहां कौन सा अनाड़ी है।
भारत की संस्कृति की इन्दिरा की जीत,
कहो शंकर न लग रही किस को प्यारी है।
जीत हुई इसी लिये फूले न समाएं फूल,
रंगा नव रंग में उमंग भरा बाग है।
खुशियों का यहां वहां सब ठौर देखो तो,
भंवरों ने झूम झूम गाया नव राग है।
और सब फूलों में एक फूल बहुत बड़ा,
खिला हंसा बंग बन्धु शेख का बिराग है।
धन्य है वसन्त बलिहारी क्यों न हो पिपासु,
शंकर यही तो तेरा आज बड़ा भाग है।

———

ग़लत लोगों का ग़लत जीना

—रघुनाथ सिंह 'यादवेन्द्र'

सिर-कनपटियों के
सफेद बालों पर लगा कर खिज़ाब
करते हैं देखने का प्रयास
बैसाखियों के उस पार
दूर छूटे ख्वाब,
बहुत चाहते हैं झुठलाना
मोमी दुनिया के
बुढ़ापे को
छुपाना,

मगर
संशयों की जुगाली करते
देखते हैं आगत को
बंदरी की तरह सीने से चिपकाये हैं
मृत बच्चे-से विगत को,
मूक-बधिर-से बोलने की छटपटाहट में
कोसते हैं वर्तमान को,
मोतियां ईं-दृष्टियां
देख नहीं पाती स्वच्छ दिनमान को।

और—
निहारते ही अल्हड़-यौवना को
असमय
तोड़ते हैं तिलस्मी रहस्य,
पपड़ाये होठों की
वीरान ड्योढ़ी पर
ऊंघते शब्द लड़खड़ाते हैं
ओऽम् शाऽऽन्ति . ! ओऽम्...शाऽऽन्ति...!!

———

कनपटी के बाल

—मुकुट सक्सेना

कुछ भी नहीं बदला
इस लम्बे समय में
चन्द सवालों के सिवाय !
मेरे गांव की चौपालें
बाखर,
पंडित जी के आँगन का नीम
टेढ़े-मेढ़े सकरे-दगड़े
शाम के अलाव
मिल बैठ कर
बात-चीत करने का चाव
आवश्यक वस्तुओं की
दो चार दूकान
आदमी के अन्दर
अब भी जीवित रहता हुआ इन्सान
कुछ भी नहीं बदला
इस लम्बे समय में
मेरी कनपटी के बालों के सिवाय !!
काशी से लाया हुआ
बाबा जी का शंख
पिता जी के
विवाह का पलंग
नाना का दिया हुआ
बड़ा बक्स
मां-वाला पानदान
क्रमिक-खानदान
कुछ भी नहीं बदला
इस लम्बे समय में
मेरे झुर्रीदार गालों के सिवाय ।
किशोरों की कींच सनी
गेंदें
युवकों के खून का
तुफान
कुछ कर गुजरने का
औसान
युवतियों के रंगीले
सपने
कभी-जभी की छेड़
प्रौढ़ों का बोझ, अभाव
और
वृद्धों के अनुकूल
कुछ भी तो नहीं बदला
इस लम्बे समय में
मेरे ही ख्यालों के सिवाय !!

———

आवाज़

—सुदर्शन पानोपती

वही आवाज़ फिर आने लगी है
कहां तक यह रुलाए गी मुझे यों ?
निरंतर गूंज फटते कहकहों की
कहां तक यह सताये गी मुझे यों ?

फिज़ा में तैरती परिहास की बू
परायापन नज़र को खटकता सा
नयन को टोह अनुरागी-जनों की
नगर में रींगता नाला घृणा का
पिपासित जाम लुढ़की सी सुराही
मधु को तरसते मैखार उन्मत
बड़ा ही खिन्न सा वातावरण था।

शहर से दूर निर्जन में खड़ा हूँ
वही आवाज़ फिर आने लगी है
अजब आवाज़ आती है कि जैसे—
मनुज जंगी तराना गा रहा हो
कि जैसे मनुजता बिल्ला रही हो।

गुलाबी सांझ का यह रूप-जैसे
किसी मासूम का शोणित गिरा हो
हवा की सरसराती लोरियां-यों
कि जैसे इक फरिश्ता रो रहा हो।
कभी विचलित सितारों का लुढ़कना
कभी मनहूस चिड़ियों का बिलखना
यही संकेत करता है कि जैसे…
कहीं तहजीब का मातम हुआ है।

इसे मैं भ्रम कहूं या सत्य है यह
कि यह परिवेश मेरी सभ्यता का
कहीं यदि धातु-युग का मनुज देखे
घृणा से फेर ले मुंह, और सोचे
कि पत्थर का ज़माना ही भला था।

आज़ाद बंगला

—उपेन्द्र रैणा

कोई किसी लाश को सिरहाना बनाकर, खुद किसी
लाश का सिरहाना बन चुका है।
और दूर से किसी की रेंगने की सरसराहट सुनाई देती है,
जो हाथ में लिया हुआ झंडा लगातार फहराये जा रहा है।
और दूसरा कोई सीने पे गोली खाके आगे आगे बढ़ता जा रहा है।
और कोई जय बंगला देश का नारा लगाता हुआ शहीद हो जाता है।
और किसी की मां आंखों में आंसू लिये हुए अपने बेटे का इन्तजार करती है।
या तो वह अपने बेटे से गले मिलकर खुशी के आंसू बहाती है,
या, अपने बेटे के शहीद होने की खबर सुन कर,
तो तब उसकी यह शान होगी,
कि उसका बेटा वतन पर शहीद हो गया है,
हाथ में बन्दूक लिये हुए मां आज खुद लड़ने जा रही है।
आदम का लहू बार बार आवाज़ देता है।
इसी धरती की कसम,
जिसने मुझे जन्म दिया
जिस पर मैं ही आज आखिरी नींद सो रहा हूँ।
जिस पर आज मैं ही बहा रहा हूँ।
मां बार २ बेटे को गीली आवाज़ से पुकारती है,
"मेरा बेटा मरा नहीं वह ज़िन्दा है, वह ज़िन्दा है,"
और आज वही माई का लाल ज़िन्दा हो कर,
"सोनार बंगला देश" को कंधे पर उठाये
पूरब में सूरज की तरह उगता है।"

— — —

भारत के सेनानी

—एम. रामबनी

स्वर्ण अक्षर में लिखी जाएगी तेरी अमर कहानी,
आगे आगे पग धरता जा भारत के सेनानी।

तू ने मां की लाज की खातिर अपनी जान गंवायी।
प्यारे देश की आन की खातिर सर की भेंट चढ़ायी।
तू ने दिन को दिन न समझा रात को रात न जाना।
अपने प्राण गंवा के तूने देश की शान बढ़ायी ।।

युग युग तक जग याद करेगा तेरी यह कुर्बानी।
आगे आगे पग धरता जा भारत के सेनानी ।।

बंगला देश की धरती को तू ने स्वतन्त्र कराया।
तेरी इक ललकार से पूरा पाकिस्तान थराया।
एक लाख सेना ने जब हथियार जमीं पर छोड़े।
यू. एन. ओ. में भुट्टो ने था जी भर शोर मचाया ।।

राज बंग बन्धु को देकर दोहराई रस्म पुरानी।
आगे आगे पग धरता जा भारत के सेनानी ।।

छंब क्षेत्र में शत्रु की हर चाल असफल बनाई।
नेट से सैबर जेट को तोड़ा आफत खूब मचाई।
तोड़े टैंक शकर गढ़ में हों जैसे कई बताशे।
[1]रन में वह रण किया शत्रु ने शीघ्र पीठ दिखाई ।।

तुझ सा कोई शूर न जग में न तुझ सा बलिदानी।
आगे आगे पग धरता जा भारत के सेनानी ।।

भारत के सेनानी तुझ से दुनिया प्यार करेगी।
जब तक रहेगी धरती दुनिया तुझ को याद करेगी।
तू ने आज़ादी की रक्षा के हित अपने प्राण गंवाए।
देश की माटी युगों युगों तक तुझ को याद करेगी ।।

आज तुम्हारी याद है दिल में और आंखों में पानी।
आगे आगे पग धरता जा भारत के सेनानी ।।

———

1. रनकच्छ

ज़िन्दगी का दफ्तर

—फूलचन्द 'मानव'

जिन्दगी के इस चलते फिरते दफ्तर में
पी. यू. सी. (विचाराधीन पत्र) को तरह
'डील' हो जाती हैं—
हमारी आशाएं।

कुछेक पर, चतुर सहायक
कटु टिप्पणी लग. देते हैं
कुछ, रिकार्ड-कीपर 'पुट-ग्रप' ही नहीं करता
ग्रौर कुछ
बगैर आज्ञा के ही
फाइल कर दी जाती हैं
पैंडिग पड़े केसों की तरह
बहुधा
रिमाइंडर न जाने की लाचारी में
कुछ ड्राफ्ट
आब्जेक्शन लगा दिये जाते हैं,
शेष (जो बचते हैं)
सब की पेजिंग—
'रब-ग्राउट' कर दी जाती है।
और इस तरह
बिगड़ जाती है—सपनीली भाषाएं।

जिंदगी के इस चलते फिरते दफ्तर में
'पेपर अंडर कंसिड्रेशन' की तरह
डील हो जाती हैं—हमारी ग्राशाएं।

———

पत्र-मंजूषा

(शीराज़ा आपकी नज़रों में)

1. डा. शिवनन्दन कपूर- खण्डवा (मध्यप्रदेश)

शीराजा का दिसम्बर अंक मिला ! धन्यवाद। पहले की अपेक्षा मुखपृष्ठ में विशेष कलात्मक तथा कान्ति देखकर आपको बधाई देने का मन कर रहा है। सामग्री का चयन भी सुन्दर है। डा. बाली तथा जगदीश प्रसाद द्विवेदी के लेख गंभीर मनन के अभिव्यञ्जक हैं। श्री गोपीरञ्जन अग्रवाल का लेख मनन और मनोरंजन का मनोरम समन्वय है। सम्पादकीय अवसर के अनुकूल है। सब मिलाकर उपयुक्त चयन तथा सुन्दर सम्पादन के लिये सम्पादक का अभिनन्दन।

2. डा. निजामुद्दीन—श्रीनगर

दिसम्बर का शीराजा मिला। अंक जोरदार रहा। वधाई। आशा है भविष्य में आप इसी प्रकार की सारगर्भित सामग्री से परिपूर्ण अंक निकालने में समर्थ होंगे। इस अंक का सम्पादकीय राष्ट्रीय भावना से युक्त है।

3. श्री विष्णु सक्सेना—पिंजौर (हरियाणा)

सत्य की प्रतिष्ठा के लिये शक्ति प्रयोग की आवश्यकता से लेकर अपने पराये की पहचान तक का पूरा सम्पादकीय ठोस तथ्यों को लेकर एक सामयिक आवश्यक बात कहता है कि शान्ति स्थापना के लिये इस उपमहाद्वीप में भारत का एक शक्ति बनना बहुत बड़ी आवश्यकता है। ठोस सम्पादकीय के लिये बधाई स्वीकारें।

'हिन्दी कहानी की कहानी' व 'कवितान्तर प्रक्रिया अकविता' दोनों लेख

भी पठनीय हैं। शीराजा इस बार और भी निखरी हुई लगी।

4. श्री शिव 'निर्मोही'—पैन्थल

शीराजा का नवीनतम अंक (वर्ष ७ अंक ३) पढ़ा। हिन्दी पत्रिका का उर्दू नामकरण कुछ अस्वभाविक सा लगता है। क्या आप इस पत्रिका का नामकरण हिन्दी में नहीं कर सकते जो पत्रिका के स्तर के उपयुक्त हो ?

पत्रिका में संगृहीत सामग्री वाचनीय है। सम्पादकीय में 'अपने पराये की पहचान' में व्यक्त आपके विचार सचेत राष्ट्रवादियों की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। सत्य की प्रतिष्ठा के लिये शक्ति प्रयोग की अनिवार्यता शीर्षक के अन्तर्गत आपने बंगला देश के प्रति भारतीय पक्ष को स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत पत्रिका में डा. श्याम परमार का लेख कवितान्तर प्रक्रिया अकविता तथा डा. देवराज बाली का लेख 'अस्तित्ववाद' और 'मानवतावाद' इस अंक की श्रेष्ठ रचनाएं हैं। स्वीकृति कहानी भी अच्छी है।

डोगरी साहित्य पर समीक्षात्मक लेखों को अपनी पत्रिका में विशेष स्थान देने का प्रयास करके कृपया पाठकों की जिज्ञासा का भी ध्यान रक्खें।

5. श्री केदारनाथ कोमल—नई दिल्ली

शीराजा का दिसम्बर ७१ अंक मिला। धन्यवाद। कल रात सारा खत्म किये बिना न रहा गया। इतने सुन्दर प्रयास के लिये बधाई। यह कामुकता की ओर बढ़ रही प्रवृत्ति हमें कहां ले जायेगी, अस्तित्ववाद और मानवतावाद कश्मीर अपने दर्पण में, तथा कवितान्तर प्रक्रिया अकविता विशेष रूप से पसन्द आये। उनके लेखकों को मेरी ओर से बधाई तथा शुभ कामनाएं।

जम्मू जैसे स्थान से इतनी सुन्दर स्वस्थ पत्रिका देख कर सन्तोष मिला। आपकी पत्रिका का उद्देश्य राष्ट्रीय एकता की ओर भी है। सचमुच आज ऐसी पत्रिकाओं की बहुत आवश्यकता है।

6. श्री फूलचन्द 'मानव'—चण्डो गढ़

शीराजा का दिसम्बर ७१ अंक मिला। सम्पादकीय में क से च तक सभी कुछ पढ़ गया हूं ऐसा ही कुछ न कुछ साहित्यिक भी हर बार आप जरूर लिखा करें ऐसी अपेक्षा है।

नवस्वर में श्याम भाई की अकविता पर टिप्पणी और कथा कुन्ज की दोनों ही रचनाएं मुझे पसन्द हैं। कामुकता की ओर··· ले जायेगी श्री स. रामकृष्णन का भवन जनरल से उद्धृत लेख इस अंक की उपलब्धि है। श्री जगदीश प्रसाद द्विवेदी, दुर्गाशंकर त्रिवेदी, श्याम कुमार बादल, विष्णु सक्सेना आदि की रचनाएं भी पठनीय हैं।

7. डा. मुहम्मद अयूब खां—श्रीनगर

शरदावकाश के बाद अपका भेजा हुआ शीराज़ा वर्ष ७ अंक २ प्राप्त हुआ। अनेक धन्यवाद। शीराजा आप के सुयोग्य सम्पादकत्व में अवश्य ही प्रगति की ओर उन्मुख हो रहा है। मैं शीराजा के इस अंक से प्रभावित हुआ। आशा है कि भविष्य में उसका रूप और भी निखरेगा। मेरी शुभ कामना है कि यह त्रैमासिक भारत के उच्चतर हिन्दी त्रैमासिकों से भी सर्वोत्तम बन सके। ईश्वर आप को सफलता प्रदान करे। सुदर्शन पानीपती, राजेन्द्रमोहन कौशिक तथा डा. संसार चन्द जी की रचनाएं पसन्द आई। सम्पादकीय से भी पत्रिका का गौरव बढ़ा है।

8. श्री मनोहर लाल शर्मा—दिल्ली विश्व विद्यालय, दिल्ली

शीराजा का दिसम्बर ७१ का अंक देखा। पत्र में व्यवस्थित सुगठित एवं अशुद्धियों से रहित प्रचुर सामग्री पाकर यह विश्वास हो गया कि 'शीराजा' अपने वयक्रम से प्रौढ़ होती जा रही है। इस महत प्रयास के लिये बधाई।

9. श्री पीयूष गुलेरी—धर्मशाला हिमाचल प्रदेश

शीराजा वर्ष ७ अंक ३ मिला। प्रसन्नता हुई, आपका बहुत बहुत धन्यवाद शीराज़ा एक नज़र में पी गया। एक बैठक में पढ़कर उठा। लेख लहरी में यह कामुकता की ओर ··ले जायेगी सुन्दर अनुवाद है। हिन्दी कहानी की कहानी भी मनोरंजक है और साहित्यिक लेख है। पत्नी और प्रेमिका कहानी भी बहुत सुन्दर और आत्मीयता लिये हुए है। कवितान्तर प्रक्रिया अकविता एक सुन्दर समीक्षात्मक चित्र है।

10. श्री रामनारायण उपाध्याय—खण्डवा (मध्यप्रदेश)

संस्कृत तो सभी भारतीय भाषाओं की जननी है। आप जम्मू कश्मीर जैसे स्थान पर हिन्दी की जो सेवा कर रहे हैं उसे भुलाया नहीं जा सकता।

अहिन्दी भाषी प्रदेश में हिन्दी की सेवा विशेष महत्व रखती है। इस दृष्टि से आपका कार्य ऐतिहाहिक महत्व का रचनात्मक कार्य है।

शीराजा में आप लोक भाषाओं पर जितनी अधिक सामग्री दे सकें उतना अधिक लाभ होगा। लोक भाषाएं तो सहायक नदी की तरह है जिससे राष्ट्रभाषा स्मृद्ध होती आई है।

मेरा आप से नम्र निवेदन है कि आप अपनी पत्रिका में कश्मीरी, डोगरी, लद्दाखी, भद्रवाही, पुन्छी आदि लोक भाषाओं का प्रारम्भिक परिचय इत्यादि और विकास उनके लोकगीत, लोक कथाएं, लोक कहावतें तथा वहां के जन जीवन तथा संस्कृति पर जितनी अधिक सामग्री दे सकें उतना पुन्य कार्य करेंगे हिन्दीं साहित्य पर लिखने वाले तो बहुत हैं उनके लिये पत्र पत्रिकाएं भी कम नहीं हैं लेकिन लोकभाषा पर सामग्री प्रकाशित करने वाले विरले ही साहित्य साधक मिलते हैं। आपके सम्पादन में विश्वास है इस कार्य को बल मिलेगा।



A J&K ACADEMY PUBLICATION